संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२६ ● : अंक २५ ● २० जून २०२४ (गुरुवार) ज्येष्ठ शुक्लपक्ष त्रयोदशी सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्: १६६०८५३१२५

आर्य समाज स्थापना दिवस पर हर घर ओ३म् ध्वज -देवेन्द्रपाल वर्मा

हर आर्य को आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता -चौ. रणवीर सिंह

आगामी कुम्भ मेले में विश्व आर्य महासम्मेलन -पंकज जायसवाल

नारायण स्वामी आश्रम रामगढ तल्ला में अन्तरंग सभा की बैठक व योग शिविर का सफल समापन

नारायण स्वामी आश्रम रामगढ़ तल्ला, नैनीताल में आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अन्तरंगत बैठक की अध्यक्षता करते हुए अपने सम्बोधन में सभा प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी ने उपस्थित आर्यों से कहा कि "महात्मा नारायण स्वामी ने रामगढ़तल्ला में साधकों के लिए इस आश्रम की स्थापना कर तथा पर्वतीय क्षेत्र की समस्याओं को दूर कर लोगों को कुरीतियों के प्रति जागृत किया। उनका यह योगदान क्षेत्रवासियों के सर्वांगीण विकास के लिए सदैव स्मरणीय रहेगा।

महर्षि द्वारा स्थापित आर्य समाज ने समाज व राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं व पाखण्डों के लिए हर सम्भव प्रयास व बलिदान किये। सुराज्य व स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक महर्षि देव दयानन्द सरस्वती द्वारा सन् १८५७ में प्रज्ज्वलित वह चिंगारी १९४७ में शोला बनकर सफल हुई। आज हर आर्य को अपने मनभेदादि मिटाकर देश की वर्तमान ज्वलन्त समस्याओं के लिए संगच्छव के भाव से मिल कर कार्य करना होगा। देश फिर विधर्मियों के निशाने पर है।

सभा प्रधान ने आगे कहा कि महर्षि की २००वीं जयन्ती व आर्य समाज की स्थापना के १५०वें वर्ष के उपलक्ष्य में देश-विदेश में काफी बड़े छोटे समारोह १२ फरवरी, २०२३ से हो रहे हैं। इस अवसर पर मैं प्रदेश के आर्यो का आवाहन करता हूँ कि वह हर घर ओ३म् ध्वज लगायें तथा कम से कम १५० लोगों को सत्यार्थ प्रकाश भेंट कर उन्हें वैदिक धर्म व आर्य समाज के विषय में जानकारी दें।

दिवंगत आत्माओं को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दो मिनट का मौन रखा गया तत्पश्चात् सभा मंत्री श्री पंकज जायसवाल जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि "रामगढ़ तल्ला, नैनीताल में आर्य समाज को प्रचार प्रसार की नितान्त आवश्यकता है। महर्षि की २००वीं जयन्ती व आर्य समाज के स्थापना के १५० वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में उ.प्र. में भी बड़ा कार्यक्रम होना आवश्यक है जिसके लिए आगामी २०२५ के कुम्भ मेला के अवसर पर फरवरी, २०२५ में विश्व आर्य महासम्मेलन होना तय है। इसके लिए प्रदेश की हर आर्य समाजें अभी से तैयारियाँ शुरू कर दें।

आर्य प्रतिनिधि सभा के उप प्रधान चौधरी रणवीर सिंह जी ने कहा कि हमें आत्मनिरीक्षण की महती आवश्यकता है। महर्षि की २००वीं जयन्ती व आर्य समाज स्थापना के १५० वर्ष के सुअवसर पर महर्षि के बताये मार्ग पर पहले स्वयं चलना होगा। हर घर देवयज्ञ का आरम्भ अपने परिवार के साथ-साथ परिवार का हर सँस्कार आर्य समाज में करना होगा।

सभा को पंडित रणधीर शास्त्री, श्री ज्ञानेन्द्र मलिक-उपमंत्री, डॉ. विश्वमित्र शास्त्री, आचार्य विश्वव्रत शास्त्री, कर्नल कृपाल सिंह ढाका, श्रीमती प्रियंका शास्त्री, पं. अमीचन्द्र, श्री मदन शर्मा, कुमारी आशा आदि ने अपने उद्बोधनों व भजनों के द्वारा सम्बोधित किया।

अन्त में सभा उपप्रधान श्री हरवीर सुमन जी ने कहा कि प्रदेश की हर आर्य समाज अपने चित्र व यथार्थ आय का दशांश सही समय प्रति वर्ष अवश्य सभा कार्यालय में जमा कर दें। अन्तरंग सभा में सर्वश्री बृजेन्द्र सिंह, उपमंत्री, राजकुमार अग्रवाल, रवीन्द्रनाथ जायसवाल, राम स्नेही सिंह, देवेन्द्र आर्य, राजपाल आर्य, राहुल कुमार अग्रवाल, शिव कुमार आर्य, एड०, नरेन्द्र सिंह, एड०, लक्ष्मीकान्त, विजय जायसवाल, मदन शर्मा, डॉ. भरत राठी, नवीन आर्य, संजय रस्तोगी, सर्वश्रीमती ओमकली सिंह, श्रीमती प्रियंका शास्त्री आदि सहित प्रदेश की समाजों के अनेक प्रतिनिधि उपस्थित थे।

आर्य समाज मंदिर पिलखुआ (हापुड़) द्वारा दिनांक १६, १७ व १८ जून, २०२४ को आश्रम में वैदिक योग साधना शिविर व वेद प्रचार कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसके संयोजक श्री अशोक आर्य जी थे।

●●●

वेदामृतम्

यो अस्य पारे रजसः, शुक्रो अग्निरजायत।
स नः षर्पदति द्विषः।। ऋ० १०.१८७.५

यह विश्व तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण का क्रीडास्थल है। मनुष्य का मानस भी इन गुणों से अछूता नहीं रहता। कभी उसके अन्दर तमोगुण प्रबल हो जाता है, जिससे उसके सोचने-विचारने और कार्य करने की पद्धति तामसिक एवं पाशविक हो जाती है। कभी रजोगुण की प्रबलता से वह प्रवृत्ति-प्रधान हो जाता है। कभी तमोगुण और रजोगुण मिलकर उसे तमः क्रिया-प्रधान बना देते हैं। कभी सत्त्वगुण के प्राबल्य से उसका मानस ज्ञानमय एवं सात्त्विक प्रवृत्तियों से परिप्लुत हो जाता है।

तमोगुण एवं रजोगुण के मिश्रण की प्रधानता से मानव के अन्दर द्वेष-वृत्तियां 'पनपती हैं। ये द्वेष-वृत्तियाँ उसके विचार और आचरण दोनों में व्याप्त होकर भयंकर- से-भयंकर काण्ड उपस्थित कर सकती हैं। द्वेषवृत्तियों से घिरकर मनुष्य वैयक्तिक या सामूहिक हानि पहुँचाने में एवं हत्या कर डालने तक में प्रवृत्त हो जाता है। समाज या राष्ट्र में जितने अधिक व्यक्ति इन द्वेषवृत्तियों के शिकार होते हैं, उतना ही अधिक समाज एवं राष्ट्र अव्यवस्थित, अनियन्त्रित, विघ्नित, दुराचारों से पीड़ित तथा अविकसित हो जाता है। द्वेषवृत्तियाँ ऋजु को कुटिल बना देती हैं, न्याय के आराधक को अन्यायी बना देती हैं, समाज-सेवक को समाज-भंजक बना देती हैं, धर्मात्मा को अधर्म का पुजारी बना देती हैं, शान्ति के उपासक को अशान्ति में आनन्द लेनेवाला कर देती हैं। उन द्वेषवृत्तियों से बचने का एक उपाय है अग्नि प्रभु का चिन्तन। वह प्रभु किसी के प्रति द्वेष से प्रेरित होकर कोई कार्य नहीं करता। उसका दण्ड देना भी सात्त्विक वृत्ति तथा प्राणियों की हित-भावना से होता है। अतः हम अग्निस्वरूप परमेश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि वह हमें द्वेष- वृत्तियों से पार करे।

आज मेरे मनोमन्दिर में तेजःस्वरूप परमेश्वर आविर्भूत हुआ है, जो तमोगुण एवं रजोगुण से परे शुक्र-शुद्ध सत्त्वगुण में विद्यमान होता हुआ मेरे मन में सात्त्विक गुण- कर्मों की धारा बहा रहा है। वह प्रभु सदा ही मुझे द्वेषवृत्तियों से पार करता रहे, जिससे मेरा व्यक्तित्व, मेरा समाज और मेरा राष्ट्र सर्वथा द्वेषरहित होकर चहुमुखी विकास को प्राप्त करते रहें। हे अग्निदेव ! मेरी इस अभीप्सा को पूर्ण करो, पूर्ण करो।

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रीमद्द यानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर फरवरी 1925 में

श्री प्रिं० बालकृष्ण जी का भाषण

सज्जनो ! आज संसार में विकास चल रहा है। सब उन्नति कर रहे हैं। सब तरफ 'आगे बढ़ो' की ध्वनि गूंज रही है। परन्तु हमारी हिन्दू जाति मरती जा रही है। इसकी वृद्धि किसी प्रकार भी होती नहीं दीखती। यह हिसाब द्वारा मालूम किया जा सकता है कि जिस क्रम से यह पहले घट रही थी उससे ५०० वर्ष में इसका पता न रह जाता। परन्तु अब जिस क्रम से घट रही है उसके हिसाब से तो यह और भी जल्द अपना नामोनिशान खो बैठेगी। ५० वा ६० वर्ष में ईसाई मत और इस्लाम की बढ़ती हुई आग में यह भस्म हो जायगी। यह सब प्रकार घट रही है। कुछ लोग आपस के दुर्व्यवहार से जो अछूत हैं या समुद्र यात्रा कर चुके हैं, वे विरादरी और दूसरे पचड़ों से धर्म त्याग रहे हैं। कुछ विधवाएं पड़ी हैं जो १ वर्ष से लेकर ५० बर्ष की आयु तक की हैं। इसके अतिरिक्त कितने ही लाख साधु हैं। ये सब सन्तान उत्पन्न नहीं करते। इन सब को विवाह करके प्रजावृद्धि करनी चाहिए। १ करोड़ बा १।। करोड़ तो इनके विवाह से बढ़ सकते हैं। हम को चाहिये कि अपने अन्दर की कुरीतियों का परित्याग करके पुष्ट बनें और तब जीवित रहने वाली सन्तान उत्पन्न करें, क्योंकि आज दो में से एक बच्चा तो अवश्य ही मर जाता है। इसको रोकना चाहिये । साथ ही विधवाओं और साधुओं को मेरा आशय तमाम से नहीं है, किन्तु बने हुओं से है-विवाह करने चाहियें। यह तो भीतरी वृद्धि रही। इसके अतिरिक्त बाहर से भी अपनी वृद्धि करनी पड़ेगी और उसका तरीका है शुद्धि ।

शुद्धि सर्वदा शास्त्र-विहित है। ६५ लाख विधवाए, जो कैनाड़ा की आबादी के बराबर हैं, और २५ लाख साधु एक ओर वृद्धि कर सकते हैं और दूसरी ओर शुद्धि कर सकते हैं। 'सत्यार्थ प्रकाश' के दूसरे और तीसरे समुल्लास के अनुसार हमें शुद्धि करनी चाहिये । अर्थशास्त्र की दृष्टि से हमारे लिए यह परमावश्यक है कि हम साधुओं और विधवाओं की सुव्यवस्था करें। बाल-मृत्यु को यत्नपूर्वक रोकें और शुद्धि द्वारा गये हुओं को वापस लें और यदि दूसरे भी आना चाहें तो उन्हें भी लाने का यत्न करें।

डा. केशवदेव जी शास्त्री का व्याख्यान

देवियो एवं आर्य सज्जनो !

जो कार्य कोलम्बस ने अमेरिका को खोज करके पूर्ण किया था, वही वेद की खोज करके महर्षि दयानन्द ने किया है। वेद पहिले विद्यमान थे, परन्तु उनके यथार्थ अर्थ लुप्तप्रायः हो चुके थे। उन्हें प्रगट करके ऋषि ने स्वाधीन "विकासवाद" का उज्ज्वल आदर्श हमारे सन्मुख रक्खा । ऋषि की धारणा थी कि आदित्य ब्रह्मचारी ४०० वर्ष पर्यन्त जीवित रह सकता है। डा. नेवर ने फिलाडलफिया (Philadlaphia) में व्याख्यान देते हुए कहा था कि समय आ रहा है जब लोग १०००० वर्ष तक जियेंगे। १८५९ ई. में डार्विन ने विकासवाद चलाया था। १९१५ ई० में पनामा की रेसवेटरिङ्ग कांफ्रेंस में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए डा. लूथर ने, जो एक बड़ा आविष्कारक है, और जो बिना खेती के अन्न उत्पन्न करने वाला है, कहा था कि हम चार पुश्तों में मनुष्य को बदल सकते हैं। परन्तु ऋषि दयानन्द ने स्वरचित संस्कारविधि के २३ वें पृष्ठ के नोट में लिखा है कि संस्कारों से क्या प्रभाव पड़ता है। हमारी वैदिक सभ्यता इस विकास को बड़ी सुन्दर रीति से बतलाती है। योग दर्शन की फिलासफी में आयु की वृद्धि होती है इसके अनेकानेक प्रमाण पाये जाते हैं। जम्मू में चम्पाराज योगी ८५ वर्ष की अवस्था का है परन्तु उसके शरीर की कान्ति से युवावस्था ही टपकती है। ४० वर्ष से लोगों ने उनका समान (एकसा) ही देखा है। वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि च्यवन ऋषि वृद्ध से युवा हुआ था, इससे आप स्वयं देख सकते हैं हमारा विकासवाद कितना आगे है। कि ऋग्वेद में लिखा है कि प्रत्येक परमाणु को नवीन कर लो और शतायु बनो। एक वर्ष में सारा शरीर बदल जाता है यह भी वैद्यक का सिद्धान्त है।

१५वीं शताब्दी में कारनैरो जिसने वेनिस (Venice) की नहर बनाई थी, ४२ वर्ष की अवस्था में बीमार हुआ। लोगों ने कहा इसके बचने की आशा नहीं। परन्तु उसने अपना जीवन नियमानुसार बनाया, खान-पान का संयम किया और उत्तरोत्तर उसकी दशा सुधर गई। ६५ वर्ष की अवस्था में एक दिन १२ औंस नियत खुराक से १४ औंस कर दी। उसी दिन बीमार हुआ। तदनन्तर उसी संयम पर चला। ६५ वर्ष की अवस्था में एक पुस्तक लिखी और १०३ वर्ष तक जीता रहा। उसका कथन है कि मनुष्य की मृत्यु पके फल समान होनी चाहिये। कोई पीड़ा नहीं होनी चाहिये। बहुत सी स्त्रियों को प्रसव वेदना अधिक होती है। इसका कारण उनके स्वास्थ्य का दोष तथा अजीर्ण है। नियमानुसार रहने वाली स्त्री को कभी कोई पीड़ा नहीं होनी चाहिये। न्यूयार्क में डा. कैरल तजुर्बे (Experiment) कर रहे हैं। उनके यहां एक प्रकार के रस में रक्खा हुआ मुर्गी का दिल १२ वर्ष से गति कर रहा है। इसी प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क १० वर्ष से गति शील है।

छोटी आंत बालों का जीवन अधिक होता है। जैसे तोता १५० वर्ष जीता है। डा. एण्डर्सन ने दिखाया है कि मन की प्रवृत्ति से शरीर का भार बढ़ जाता है। तराजू पर लिटा कर तजुर्बा किया गया है कि मनोबल शिर की ओर होने से भारी हो जाता है। इस प्रकार मन की शक्ति की प्रधानता दिखाई गयी है जो हमारा प्राचीन वैदिक सिद्धान्त है और योग की जबरदस्त फिलासफी है। इन वैज्ञानिक और विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों को वेद की खोज से ऋषि ने हमारे सामने रक्खा है। इनसे आगे बढ़कर ऋषि ने हमें स्वतन्त्र विकासवाद का सिद्धान्त दिया है। कोलम्बस को जब स्पेन के राज दरबार में मान मिला था तो लोगों ने पूछा था कि तुमने क्या किया है? कोलम्बस ने उन्हें बड़ा अच्छा उत्तर दिया था। इसी प्रकार ऋषि ने वेदों से कोई नई बात तो नहीं निकाली परन्तु उन्हीं सिद्धान्तों को जो वहां थे परन्तु लुप्त से थे बताया और हमारी सभ्यता का सच्चा आदर्श हमारे सामने रक्खा।

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

५१-जिस समय कहा फरिश्तों ने कि ऐ मर्यूयम तुझ को अल्लाह ने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत् की स्त्रियों के।।

-सं० १। सि० ३। सू० ३। आ०४५

(समीक्षक) भला जब आज कल खुदा के फरिश्ते और खुदा किसी से बातें करने को नहीं आते तो प्रथम कैसे आये होंगे? जो कहो कि पहिले के मनुष्य पुण्यात्मा थे अब के नहीं तो यह बात मिथ्या है। किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था उस समय उन देशों में जङ्गली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसी लिये ऐसे विद्या-विरुद्ध मत चल गये। अब विद्वान् अधिक है इसलिय नहीं चल सकता। किन्तु जो-जो ऐसे पोकल मजहब हैं वे भी अस्त होते जाते हैं: वृद्धि की तो कथा ही क्या है।। ५१।।

५२-उस को कहता है कि हो बस हो जाता है। काफिरों ने धोखा दिया. ईश्वर ने धोखा दिया, ईश्वर बहुत मकर करने वाला है।

-मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ५३।५४॥

(समीक्षक) जब मुसलमान लोग खुदा के सिवाय दूसरी चीज नहीं मानते तो खुदा ने किस से कहा? और उस के कहने से कौन हो गया? इस का उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी नहीं दे सकेंगे। क्योंकि विना उपादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता। विना कारण के कार्य कहना जानो अपने माँ बाप के विना मेरा शरीर हो गया ऐसी बात है। जो धोखा देता और मकर अर्थात् छल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता।।५२।।

५३-क्या तुम को यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुम को तीन हजार फरिश्तों के साथ सहाय देवे।।

-म० १। सि० ४। सू० ३। आ० १२४॥

(समीक्षक) जो मुसलमानों को तीन हजार फरिश्तों के साथ सहाय देता था तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत सी नष्ट हो गई और होती जाती है क्यों सहाय नहीं देता ? इसलिये यह बात केवल लोभ देके मूर्खा को फंसाने के लिये महा अन्याय की है।। ५३।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

११ सितम्बर, १८८२, तदनुसार भादों बदी चौदश, संवत् १९३९, सोमवार

तीसरा प्रश्न-

प्रश्न- मौलवी मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

स्वामी-एक अरब छयानवे करोड़ और कितने लाख वर्ष उत्पत्ति को हुए और दो अरव वर्ष से कुछ ऊपर तक और रहेगी ।

मौलवी- इसका क्या कारण और प्रमाण है ?

स्वामी-इसका हिसाव विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है।

मौलवी- वह हिसाब बतलाइये ?

स्वामी-भूमिका के पहले अंक में लिखा है और हमारे ज्योतिषशास्त्र से सिद्ध है, देख लो।

चौथा प्रश्न-

(१३ सितम्बर, सन् १८८२, बुधवार तदनुसार भादों सुदि एकम, संवत् १९३६ विक्रमी)

प्रश्न- (मौलवी जी की ओर से) आप धर्म के नेता हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी धर्म के मानने वाले हैं या नहीं ?

उत्तर- (स्वामी जी की ओर से) जो धर्म विद्या से सिद्ध होता है उसको मानते हैं।

प्रश्न- मौलवी-आपने किस प्रकार जाना कि ब्रह्म ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया ?

उत्तर- स्वामी- प्रदान किये गये वेदों के पढ़ने से और विश्वसनीय विद्वानों की साक्षी से।

मौलवी- यह साक्षी आप तक किस प्रकार पहुँची ?

स्वामी-शब्दानुक्रम से और उनके ग्रन्थों से ।

मौलवी- प्रश्नों से पूर्व परसों यह निश्चित हुआ था कि उत्तर बुद्धि के आधार पर दिए जायेंगे, पुस्तकों के आधार पर नहीं। अब आप उसके विरुद्ध ग्रन्थों की साक्षी देते हैं।

स्वामी-बुद्धि के अनुकूल वह है जो विद्या से सिद्ध हो चाहे वह लिखित हो अथवा वाणी द्वारा कहा जावे। समस्त बुद्धिमान् इसको मानते हैं और आप भी ।

मौलवी- इस कथन के अनुसार ब्रह्म का चारों ऋषियों को वेद की शिक्षा देना विद्या अथवा बुद्धि द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है ?

स्वामी-विना कारण के कार्य नहीं हो सकता इसलिये विद्या का भी कोई कारण चाहिये और विद्या का कारण वह है कि जो सनातन हो। यह सनातन विद्या परमेश्वर में उसकी कारीगरी को देखने से सिद्ध होती है। जिस प्रकार वह समस्त सृष्टि का निमित्त कारण है उसी प्रकार उसकी विद्या भी समस्त मनुष्यों की विद्या का कारण है। यदि वह उन ऋषियों को शिक्षा न देता तो सृष्टि-नियम के अनुकूल यह जो विद्या की पुस्तक है, इसका क्रम ही न चलता ।

मौलवी- ब्रह्म ने वेद चारों ऋषियों को पृथक्-पृथक् पढ़ाया अथवा एक साथ क्रमशः शिक्षा दी अथवा एक काल में पढ़ाया ?

स्वामी-ब्रह्म व्यापक होने के कारण चारों को पृथक्-पृथक् और क्रमशः पढ़ाता गया क्योंकि वे चारों परिमित बुद्धि वाले होने के कारण एक ही समय कई विद्याओं को नहीं सीख सकते थे और प्रत्येक की बुद्धिप्राप्ति की शक्ति भिन्न-भिन्न होने के कारण कभी चारों एक समय में और कभी पृथक्-पृथक् समझकर एक साथ पढ़ते रहे। जिस प्रकार चारों वेद पृथक्-पृथक् है उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक-एक वेद पढ़ाया ।

मौलवी- शिक्षा देने में कितना समय लगा ?

स्वामी-जितना समय उनकी बुद्धि की दृढ़ता लिए आवश्यक था ।

नोट- (इसके आगे मौलवी साहब के स्थान पर मौ० और स्वामी के स्थान पर स्वा. लिखा जायगा)।

राष्ट्र के सभी राष्ट्र प्रेमी छात्र संगठनों एवं सभी युवा बहनो भइयों को इस बहन का उद्घोष कि-

सदाचारी, साहसी व संयमी युवा-शक्ति की कहानी स्वती है राष्ट्र की स्वानी

-डॉ. प्रवीण सत्येन्द्र विद्यालंकार

मैं इस लेख के माध्यम से राष्ट्र के प्रति अपनी पीड़ा, धर्म संस्कृति एवं सभ्यता (राष्ट्र की आधारशीला) के प्रति जनप्रतिनिधियों द्वारा प्रसारित भ्रांतियों व दुष्प्रचार पर अपना आक्रोश व्यक्त करने तथा राष्ट्र की सभी युवा शक्ति की विलक्षण क्षमता की मशाल को जलाने का प्रयत्न कर रही हूँ।

इस डिजिटल युग में उन्नत संचार तंत्र (प्रमुखतः मीडिया एवं सोशल मीडिया) विविध यांत्रिक व्यवस्थाएँ जहाँ प्रायः भौतिक एवं तथाकथित आधुनिकता की नदी में डुबकी लगा रहे हैं, वहीं नैतिक एवं मानवीय मूल्य बड़ी तीव्रता से टूट रहे हैं बिखर रहे हैं। अनेक सामाजिक एवं राष्ट्रीय ज्वलन्त समस्याएँ हमारे राष्ट्र के स्वाभिमान, संस्कृति (ड्रग्स, नशाखोरी, दुष्कर्म व बेरोजगारी जनित निराशा व अपराध आदि) पटल पर आघात कर रही है, प्रहार कर रही है, मानों सर्वत्र मानवता रूदन कर रही है और दानवता अट्टहास कर रही है।

मेरा नारी सुलभ मन वेदना से भर उठता है, जब सूर्य की पहली किरण मानो पृथ्वी का आलिगन करके प्रश्न करती हैं कि भारत को पुनः जगद्गुरू कैसे बना सकते है? सर्वाधिक युवाओं वाले देश के युवा बहनों एवं भाइयों को नशामुक्त निराशामुक्त एवं नकारात्मकमुक्त कैसे करें? बस इन्हीं प्रश्नों के उत्तर बनने के प्रयास में हूँ, जिसे एक व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता। यह सामूहिक कार्य है, जिसे हम सभी को मिलकर करना है। इसके लिए हमें अपनी क्षमता को पहचानना होगा।

युवा अपनी क्षमताओं का आकलन कैसे करें?

सर्वप्रथम मैं प्रबलता से कहूँगी कि हमारे जीवन में समय चाहे अनुकूल या प्रतिकूल, सुख हो या दुःख, आशा हो निराशा, सफल हो अथवा असफल हमारे विचार, हमारी सोच सदा स्वच्छ, सार्थक एवं सकारात्मक होने चाहिए। क्योंकि ऐसी सोच हमारे जीवन-निर्माण की आधारशिला है। यही उच्च विचारधारा हमें सही-गलत एवं उचित अनुचित में अन्तर करना सिखाती है। यदि यजुर्वेद के शब्दों में कहें, तो यही स्वच्छ सार्थक एवं सका रात्मक सोच ही 'शुभ सकल्प' है। इसीलिए यजुर्वेद के मन्त्र की सूक्ति कहती है- ''तन्मे मनः शिवसंकल्प अस्तु।'' अर्थात् हे प्रभु हमारा मन सदैव शुभ संकल्पों वाला हो।

यही शुभ संकल्प कुंजी है, जो हमारी क्षमताओं के ताले को पहचान कर जीवन को संवार देता है। स्मरण रखिए हममें अपार क्षमताएँ है, दक्षता है बस चिन्तन करने की आवश्यकता है, दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है।

हम सभी युवा चंदन की सुगंधित लकड़ी बने न कि कोयला

हमें अपने जीवन के महत्त्व को समझते हुए चंदन की लकड़ी बननी है, जो अत्यंत सुगंधित एवं मुग्ध होती है। फिर चाहे लकड़ी को जितना घिसा जाए उतनी ही वह सुगंधित होती जाती है एवं बेचने पर अत्यत महगी। मैं अपने विश्लेषित अनुभव से कहूँगी कि जीवन में स्थितियाँ अथवा परिस्थितियाँ चाहें जितनी विषम हो भले ही कठिन परिस्थितियों का चक्रवात क्यों न आ जाए सदाचारी एवं सद्गुणी व्यक्ति के सुविचारों व सुकर्मों की सुगंध भी वैसे ही आती है। जैसे कि चंदन घिसते हुए कीमती चंदन की सुगंध जिस प्रकार वह घिसता चंदन किसी के माथे पर लग जाए तो उसे सुगधी, शीतलता एवं शान्ति से भर देताहै। उसी प्रकार संघर्षों एवं समस्याओं की भट्टी में तपे मनुष्य का जीवन भी कुन्दन बनकर अन्य लोगों की प्रेरणा बन मूल्यवान हो जाता है।

यदि चंदन की लकडी को जलाकर हम कोयला बना दें तो न उसमें सुगंध रहेगी एवं न ही मूल्यवान। चंदन का कोयला भी उसी भाव में बिकेगा, जैसे आम कोयला। उसी प्रकार यदि हमारे जीवन में दुर्गुणों, दुर्व्यवहार एवं दुर्व्यसनों का निवास हो जाएगा तो इन कुविचारों की अग्नि में हमारा जीवन भी जलकर चंदन का कोयला हो जाएगा एवं हम समाज में मूल्यरहित हो जाएंगे।

उठो, जागों और श्रेष्ठत्व को प्राप्त करो।

यजुर्वेद ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में हमे प्रेरित किया है कि ''उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत।'' अर्थात् हम उठे. जागें और श्रेष्ठत्व को प्राप्त करें एवं दूसरों को भी कराये ताकि हम साधारण से असाधारण बन सके, ताकि जीवन से राष्ट्र पर्यन्त निर्माण कर सकें, ताकि मानव से ऐतिहासिक मानव बन सकें।

जैसे शिव के मंदिर में चूहों को प्रसाद खाते सबने देखा, किन्तु मूलशंकर सच्चे शिव की खोज में निकल कर श्रेष्ठत्व को प्राप्त कर युगपुरूष स्वामी दयानन्द सरस्वती कहलाए। जैसे अपने पिता से प्रश्न करने पर हमारे लिए क्या सम्पत्ति रखी है, का उत्तर पाने वाले नरेन्द्र दत्त कि ''स्वंय को दर्पण में देखो'' महामानव बन स्वामी विवेकानन्द सरस्वती हो गए।

जैसे सेब के पेड़ से गिरते सबने देखा किन्तु आध्यात्मिक व सहनशील आइजैक न्यूटन ने यह देख 'गुरूत्वाकर्षण का नियम' दे दिया।

जैसे एक अत्यंत निर्धन किन्तु सदाचारी परिवार के बच्चे ने राष्ट्र सेवा को ही जीवन बना छोटा लक्ष्य रखना एक गुनाह है'' का प्रेरित 'युवा गीत' सुना भारत का मिसाइल मैन एवं राष्ट्रपति डा. अब्दुल कलाम हो गया।

हमारे राष्ट्र में उठकर जागकर श्रेष्ठता को प्राप्त करने वाले अनेक महापुरूष, वीर-वीरांगनाएं विद्वान विदुषी आदि हुए व क्षेत्रों में आज भी हैं। हमें भी इस श्रृंखला को आगे बढ़ाना है इस वैचारिक क्रांति की मशाल को बुझने नहीं देना है।

सदाचरण की सुगंधी एवं सद्गुणों की सम्पत्ति- युवा-जीवन का संरक्षक बने-

जिसके मन, मस्तिष्क विचारों व कर्मों मे सदाचरण का इत्र व सद्गुणों का दिव्य धन हो उसका संरक्षण स्वयं होता है। ऐसा सम्पन्न युवा जीवन अपने मार्ग में आने वाले प्रत्येक कंटक (काँटे) को उखाड़ फेंकता है।

सद्गुण सदैव अन्तः शक्ति एवं अन्तर्रात्मा की आवाज सुनने की शक्ति प्रदान करता है।

सदाचरण आत्मबली बनाता है एवं जीवन मूल्यों के नियम व संयम सिखाता है, जो हमें मानवता की प्रतिमूर्ति के रूप में स्थापित करता है।

भारत सर्वाधिक युवाओं वाले देश के रूप में -

संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था यू.एन.एफ.पी.ए. ने वर्ष २०१४ की वर्तमान स्थिति पर एक रिपोर्ट जारी किया था, जिसमें भारत को सर्वाधिक युवाओं वाला देश घोषित किया गया है।

भारत आज वैश्विक महाशक्ति की श्रेणी में आ चुका है। निःसंदेह वैश्विक धरातल पर प्यारे भारतवर्ष की एक अलग पहचान है। हमारा राष्ट्र विश्वगुरू के रूप में पुनः स्थापित होना चाहिए। ऐसा तभी सम्भव जब हम सभी युवा मिलकर वैचारिक क्रांति को अपने जीवन की दिनचर्या बना लें।

युवा ही वैचारिक क्रांति क्यों करें?

इतिहास साक्षी है कि जब-जब युवाओं ने राष्ट्र का नेतृत्व किया है, वह राष्ट्र निर्माण एवं विश्व पताका फहराने की कहानी बन गया है। इसलिए कि युवा शक्ति जिधर चलती है, राष्ट्र उधर ही मुड़ जाता है।

जब चली महाराणा प्रताप, शिवाजी पं० रामप्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आजाद एवं पद्मिनी रानी दुर्गावती, किरणमई व झाँसी की रानी की राष्ट्रभक्ति, मातृभूमि-प्रेम की कहानी तो दुराचारियो, अत्याचारी शत्रुओं का अंत करके वे इतिहास के पन्नों के स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गए और हमारे प्रेरणा बन गए।

जब अमर वीर प्रतापी सिक्खों ने दसवें गुरू श्री गुरू गोविन्द सिंह जी के चारों पुत्रों के बलिदान की गाथा गूँजी तो वह अविस्मरणीय प्रातः स्मरणीय इतिहास की निशानी बन गय।

लोग कहते हैं, जमाना बदलता है किन्तु मैं कहती हूँ, युवा शक्ति वह है, जो जमाने को बदल डाले।

युवा-शक्ति वह है, जो राष्ट्र-यज्ञ की उत्तम समिधा बन राष्ट्र की समस्याओं का समाधान बन जाए।

भारत ही जगद्गुरु क्यों? हमारे राष्ट्र के कुछ अज्ञानी एवं मात्र सियासी सोच के जनप्रतिनिधियों को तीखे संदेश के साथ-मैं उन अयोग्य जनप्रतिनिधियों (जिन्हे राजनीतिक विरासत में प्राप्त है, जिन्हें राष्ट्र धर्म अध्यात्म, संस्कृति का कोई ज्ञान नहीं, जो राष्ट्र की सनातन परम्परा का अर्थ एवं महत्त्व का ज्ञान नहीं, जो राष्ट्र की पीड़ा का अनुभव नहीं करते, उत्तर प्रदेश के एक पूर्व मुख्यमंत्री टी.वी. चैनल पर साक्षात्कार के दौरान धर्म को अंधविश्वास बताते हैं, उन्हें धर्म की व्याख्या का ज्ञान नहीं) को मैं तीखे एवं कड़े संदेश के साथ कहूँगी कि हम सबकी एवं हमारे राष्ट्र का एक ही धर्म है, मानवता या नैतिक मूल्य का या सदाचरण धारण करना आदि यही धर्म है। इसी धर्म को सत्य सनातन वैदिक धर्म कहते हैं।

इस धर्म को धारण करने की सर्वाधिक आवश्यकता जनप्रतिनिधियों आपको है, क्योंकि आप हम सबका प्रतिनिधित्व करते हैं।

नेता वही है, जो नेतृत्वकर्तृता हो एवं नेतृत्वकर्तृता वह है, जो राष्ट्र की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक परम्परा को आगे बढाता है, जनता की समस्याओं दुःखों का समाधान व निवारण करता हो।

राष्ट्र के सभी युवाओं एवं उन सभी जनप्रतिनिधियों (जिनमें नेतृत्व गुण एवं क्षमता नहीं है) कि सम्पूर्ण विश्व में भारत को ही विश्वगुरू क्यों कहा जाता है?

क्योंकि अध्यात्म एव नैतिक मूल्य आदि हमारी राष्ट्रीय परम्परा के प्राण है।

हमारी वैदिक सनातन संस्कृति के अनुसार सदाचरण ही सर्वोत्तम धर्म हैं, अर्थात्- ''आचारः परमो धर्मः।'' यही सदाचार हमें मनुष्य बनाता है, यानी मानवीय गुणों से युक्त करता है।

जब हमारे जीवन में दो रास्ते हो और हम चयन करने में सक्षम न हों, तो यही अध्यात्म हमें सत्य मार्ग दिखाता है।

निराशा एवं दुःखो के क्षणों में अध्यात्म हमें सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है एवं चलना मात्र ही नहीं किस दिशा में चले, यह सिखाता है। किसी के प्रति दुर्भाव न रखना, जो हमें अच्छा लगता हो, अर्थात् ''प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्, ''सबको सुखी देखने का भाव यानी ''सर्वे भन्तु सुखिनः'' स्वयं श्रेष्ठ आचरण रखते हुए सम्पूर्ण विश्व को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प अर्थात् ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' एवं चाहे जितनी कठिनाईयां आएँ किन्तु सत्य पथ पर अड़िग रहने का संदेश यानी ''सत्यमेव जयते'' आदि-आदि उपर्युक्त सभी सद्गुणों मनोभावों एवं संवेदनाओं की परम्परा भारत की विशेषता है, भारत की पहचान है एवं भारतवर्ष की आत्मा है।

इसीलिए भारत जगद्गुरू है, विश्वगुरु है और यही आध्यात्मिक, मानवीय एवं नैतिक पावन, ऊर्जामय राष्ट्र सगीत हमारे स्वाभिमान, संस्कृति व सम्मान है।

दुर्गुणों-दुर्व्यसनों का स्वामी भारतीय युवा नहीं हो सकता भारतीय युवा होना अत्यत गर्व की बात है क्यों कि सद्गुणों सद्विचारों एवं सुकर्मों का पर्याय होता है हमारे प्यारे राष्ट्र का युवा वह है, जैसे सुगंध के बिना पुष्प आकर्षक नहीं लगता विनय बिना विद्या सुशोभित नहीं होती वैसे ही सदाचार हीन युवा भारतीय युवा नहीं कहलाता।

मैं अपनी लिखी एक कविता के माध्यम से भारतीय युवा का वर्णन करना चाहूँगी जिसका शीर्षक है-

भारतीय युवा की कहानी-

भारत माँ के वीर-वीरांगनाओं की है,
यही कहानी।
बुराई-व्यभिचार व झंझावातों को देखकर, भर जाए आँखों में आक्रोश और हृदय हो जाए तूफानी। भारत माँ के वीर-वीरांगनाओं की है, यही कहानी।
साहस, संयम, सदाचार व संयम का पुंज है, भारतीय युवा,
आस्था-पटल का पथ एवं शिक्षा-संस्कार-संस्कृति का पर्याय है युवा, इसलिए राष्ट्र का मेरूदण्ड है भारतीय युवा।
विपदाओं से घबरा जाए जो तुफानों से टकराकर गिर जाए जो,
जीवन की कठिनाइयों में बिखर जाए जो, वह नहीं है भारतीय युवा, नहीं है भारतीय युवा, नहीं है भारतीय युवा।
भारतीय युवा वह है जो समस्याओं का विश्लेषण कर समाधान बन जाता है, जो तूफानों का रूख मोड़ उसे अपना रक्षक बना लेता है,
जो जीवन-समाज एवं राष्ट्र की विघ्न बाधाओं का तारणहार बन हो जाता है मातृभूमि-भारत भूमि का प्यारा बच्चा।

क्रमशः.....७ पर

दयानन्द-दर्शन

-आचार्य उदयवीर शास्त्री

(भाग-२)

ऋषि ने स्वयं इस सन्दर्भ का अर्थ इस प्रकार किया है- ''अनादि नित्यस्वरूप सत्त्व, रजस् और तमोगुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म पृथक् पृथक् तत्त्वावयव विद्यमान हैं उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है, संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी अवस्था को सूक्ष्म स्थूल बनते-बनाते विचित्र रूप बनी है इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है।''

इस सन्दर्भ से स्पष्ट होता है, सत्त्व-रजस्-तमस् की साम्यावस्था-रूप नित्य प्रकृति को ऋषि समस्त जड़-जगत् का मूल उपादान कारण मानता है। प्रकृति से रचना प्रारम्भ होने पर परिणाम होते-होते किसी एक स्तर पर परमसूक्ष्म कण के रूप में पृथिवी आदि परमाणु उत्पन्न होते अथवा उभर आते हैं। इन्हीं परमाणुओं का परस्पर संयोग होकर स्थूल पृथिवी आदि तत्त्व प्रकाश में आ जाते हैं।

सांख्य-योग में इन सूक्ष्म पृथिवी आदि कणों (परमाणुओं) का पारिभाषिक नाम 'विशेष' है। इन्हीं विशेषों को मूल मानकर कणाद ने अपने शास्त्र का आरम्भ किया। इसी कारण शास्त्र का नाम 'वैशेषिक' हुआ। 'विशेषमधिंत्य प्रवर्तृतते शास्त्रं वैशेषिकम् ।' इस प्रकार आधिभौतिक जगद्रचना की पूर्ण प्रक्रिया का विवरण वैशेषिक और सांख्य मिलकर करते हैं। इनमें विरोध की संभावना भी नहीं है।

न्याय-दर्शन मुख्य रूप से केवल उन प्रमाणों का वर्णन करता है, जिनके सहयोग से आधिभौतिक आदि समस्त तत्त्वों का ऊहापोहपूर्वक यथायथ विवरण प्रस्तुत किया जाता है। प्रमाण के लक्ष्य निर्देश की भावना से न्याय में केवल एकमात्र प्रमेय आत्म-तत्त्व का विवेचन है तथा उसी से सम्बद्ध शरीर, इन्द्रिय आदि का। शेष समस्त दर्शन प्रमाणों के दोषरहित स्वरूप का विवरण प्रस्तुत करने में पूरा हुआ है।

योग-दर्शन सांख्य के एक अङ्ग को पूरा करता है। सांख्य में तत्त्वों का विवेचन इस प्रयोजन से हुआ है कि प्रकृति और पुरुष (जड़-चेतन) के पारस्परिक भेद के साक्षात्कार का मार्ग खुल सके। उस भेद का साक्षात्कार करने की पूर्ण पद्धति को यह दर्शन प्रस्तुत करता है। इस प्रकार जड़-चेतन भेद के साक्षात्कार ज्ञान की योग प्रतिपाद्य इन प्रक्रियाओं के मुख्य साधनभूत मन अथवा अन्तःकरण की जिन विविध अवस्थाओं के विश्लेषण का योग में वर्णन किया गया है, वह मनोविज्ञान की विभिन्न दिशाओं का एक केन्द्रभूत आधार है। समाज की समस्त गतिविधियों की डोर इसी के हाथ में रहती है। इसका किसी भी शास्त्र से विरोध कैसे संभव है?

मीमांसा-दर्शन कर्तव्य-अकर्तृतव्यों का विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत करता है। समाज के लिये उन अनुष्ठानों का वर्णन करता है, जो वर्तृतमान में उसके अभ्युदय और मृत्यु के अनन्तर कल्याण के साधन हैं। यह उन मनोदशाओं का प्रदीप है, जो अन्तर्निविष्ट रहती हुई समाज को विविध प्रकार के खेल खिलाया करती हैं। कोई ऐसा दर्शन नहीं, जो इसका विरोध करे। यह सभी को मान्य है।

वेदान्त-दर्शन समस्त विश्व के संचालक, नियन्ता चेतन तत्त्व का विवरण प्रस्तुत करता है। जगत् के कर्तृता- धर्तृता संहर्तृता के रूप में प्रत्येक शास्त्र ने इसे स्वीकार किया है। कोई इसका प्रतिषेध नहीं करता। वेदान्त का तात्पर्य केवल ब्रह्म के अस्तित्व एवं शुद्ध स्वरूप को उपपादन करने में है, अन्य तत्त्वों के प्रतिषेध में नहीं।

इस प्रकार सृष्टि-प्रक्रिया में अपेक्षित तत्त्वों का इन सभी दर्शनों में उपपादन हुआ। एक दर्शन का कोई एक विषय मुख्य प्रतिपाद्य है, अन्य प्रासङ्गिक हैं, जिनका अन्य दर्शनों में मुख्यतया प्रतिपादन हुआ है। इनमें विरोध की भावना न होकर अपेक्षित अङ्ग को पूर्ण करना मात्र ध्येय रहता है। इनमें आंशिक प्रक्रिया भेद भले हो, जो आवश्यक है। इस दृष्टि से निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किया जाता है। प्रायः इन्हीं को विरोध के रूप में मुख्यतया प्रस्तुत किया जाता है। वे विषय हैं-वेद-प्रामाण्य, ईश्वर का अस्तित्व, प्रमाणवाद, सत्कार्य-असत्कार्यवाद।

वेद-प्रामाण्य छहों दर्शनों में वेद के प्रति अत्यन्त आदरपूर्ण भावना प्रकट की गई है। कोई दर्शन ऐसा नहीं जहाँ वेद का निर्धान्त प्रामाण्य स्वीकार न किया गया हो। 'स्वतः प्रामाण्य' और 'परतः प्रामाण्य' इन पदों की व्याख्या में भले ही प्रक्रिया का अन्तर हो, पर वेद के प्रामाण्य के लिये अन्य किसी के सहयोग या सहारे की अपेक्षा है यह किसी को अभिमत नहीं है। किसी सिद्धान्त को वेद के आधार पर प्रकट कर देने पर वह उसका परिनिष्ठित स्तर मान लिया जाता है। विस्तार-भय से इस विषय के दर्शनसूत्रों का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया।

ईश्वर का अस्तित्व-इसको सभी दर्शनों ने स्वीकार किया है। इस विषय में सबसे अधिक डिण्डिम घोष सांख्यदर्शन के लिये किया जाता है। ऐसा कहने वालों का विचार है कि ईश्वर का अस्तित्व जगत् के निर्माण व नियन्त्रण की दृष्टि से माना जाता है। पर सांख्य इस दिशा में प्रकृति को स्वतन्त्र मानकर ईश्वर की उपेक्षा कर देता है।

इस विषय में पहली बात है कपिल के किसी सूत्र या कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि प्रकृति स्वतन्त्र है। सांख्य षडध्यायी और तत्त्वसमास सूत्रों में कोई ऐसा पद नहीं जो उक्त अर्थ को प्रकट करता हो। कतिपय व्याख्याकारों ने सांख्य-सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सांख्य में प्रकृति को स्वतन्त्र माना गया है। यदि उनका 'स्वतन्त्र' पद से यह अभिप्राय है कि जगद्रचना में प्रकृति चेतन की अपेक्षा नहीं रखती, ईश्वर-चेतन की प्रेरणा के बिना ही जगद्रचना किया करती है, तो यही कहना होगा कि उन विद्वानों को कपिल सिद्धान्त समझने में भ्रम हुआ है।

यदि 'स्वतन्त्र' पद का यह तात्पर्य समझा जाता है कि प्रकृति उपादान कारण की सीमा में अन्य किसी के अस्तित्व को सहन नहीं करती, केवल मात्र वही उपादान तत्त्व है, इतने अंश में उसका और कोई सहयोगी नहीं, इसी दृष्टि से उसे 'स्वतन्त्र' कहा गया है, तो यह ठीक है। कपिल ने जगत् के उपादानरूप में प्रकृति के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व को स्वीकार नहीं किया। फलतः ईश्वर चेतन की प्रेरणा के बिना स्वतः प्रकृति जगत् का निर्माण करती रहती है और यही उसकी स्वतन्त्रता है, यह कपिल सिद्धान्त प्रकट करना सर्वथा निराधार है। आचार्य वार्षगण्य का ऐसा सिद्धान्त रहा है, कपिल का नहीं।

सांख्यदर्शन के 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र में उपादानभूत ईश्वर को असिद्ध बताया गया है, ईश्वर के अस्तित्व को नहीं नकारा गया। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास के ईश्वर-प्रकरण में सूत्र का यही अर्थ बताया है। कपिल ने स्वयं सांख्यसूत्र (३/५६,५७) में ईश्वर को स्पष्ट ही जगत्कर्ता लिखा है। इसी प्रसंग में ऋषि दयानन्द ने सांख्य का एक और सूत्र (५/८) उद्धृत कर उसका अर्थ किया है-''इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है। कपिल के समान अन्य भी सब दर्शनकारों ने ईश्वर के अस्तित्व को पूर्णरूप से स्वीकार किया है।''

प्रमाण-प्रमाण से अर्थ की सिद्धि होती है, इस मूल सिद्धान्त के स्वीकार करने से प्रमाण के अस्तित्व में किसी को नकारा नहीं। परन्तु प्रमाणों की संख्या में विरोध का उद्भावन किया जाता है। विभिन्न दर्शनों में एक से लेकर आठ प्रमाण तक माने गये हैं। चार्वाक दर्शन में केवल एक प्रत्यक्ष प्रमाण स्वीकार्य है। वैशेषिक और बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण हैं। सांख्य योग में शब्द प्रमाण को पूर्वोक्त दो में जोड़कर तीन प्रमाण माने हैं। न्यायदर्शन में उपमान को जोड़कर चार संख्या बताई। मीमांसा और वेदान्त में इनके अतिरिक्त अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ये दो प्रमाण और बताकर छः माने गये। कुछ प्राचीन नैयायिक तथा पुराण ऐतिह्य और सम्भव ये दो अधिक बताकर आठ प्रमाण मानते हैं।

इस विषय में यह निश्चित मत है कि वस्तु-सिद्धि में किसी भी उपयुक्त प्रकार को अस्वीकार नहीं किया जाता, फिर प्रवक्ता और बोद्धारूप में अनेक प्रकार के अधिकारी होते हैं। उनके स्तर एवं परिस्थिति के अनुसार वस्तु तत्त्व को स्पष्ट करने के लिये तदुपयोगी प्रक्रियाओं को मान लिया जाता है, यद्यपि वे प्रकार अधिक व्यवस्थित प्रक्रियाओं के अन्तर्गत ही होते हैं। इसलिये जिन दर्शनों में प्रमाणों की संख्या न्यून मानी गई है, वे भी शेष को प्रमाण माने जाने का विरोध नहीं करते। उनका कहना है कि इनको अतिरिक्त प्रमाण मानने की आवश्यकता नहीं। वैसे यदि उनका उपयोग कहीं अपेक्षित है, तो इसमें उन्हें कोई आपत्ति न होगी।

ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में जहाँ-तहाँ आठ प्रमाणों का उल्लेख कर इसी अर्थ को स्पष्ट किया है। फलतः इस विषय के आधार पर भी जो परस्पर विरोध की भावना प्रकट की जाती है, उसे निराधार ही समझना चाहिये।

सत्कार्य-असत्कार्यवाद-यह वाद वस्तुओं के कार्य कारणभाव पर आश्रित है। जो वस्तु कार्य है, उसका उपादान कारण कोई अवश्य होगा। कार्य वह वस्तु है, जो अपने कारणों से उत्पन्न होती या जनी जाती है। प्रश्न यह है वह वस्तु जो अपने कारणों से जनी गई है, उस जन्म से पहले भी वह अपने उपादान कारण में है, या नहीं? ''है'' यह सत्कार्य सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय है, प्रत्येक कार्यवस्तु अपने जन्म से पहले भी अपने उपादान कारणों में विद्यमान रहती है। ''नहीं'' यह असत्कार्यवाद है। अर्थात् कोई भी कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपना अस्तित्व नहीं रखता। स्पष्ट ही ये वाद परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं।

असत्कार्यवाद का तर्क है-यदि बुने जाने से पहले ही कपड़ा धागों में विद्यमान है, तो फिर बुने जाने की आवश्यकता क्या है? तथा जो काम कपड़े से लिया जाता है, वह धागों से ले लेना चाहिये। पर व्यवहार में ऐसा संभव नहीं, धागों को बिना बुने काम नहीं चलता, और कपड़े का काम भी धागों से नहीं लिया जाता। स्पष्ट है, बुने जाने से पहले कपड़ा नहीं था, बुने जाने पर बना। इसलिये उत्पत्ति से पूर्व कार्य को असत् माना जाना युक्त एवं व्यवहार के अनुकूल है।

इस पर सत्कार्यवाद का तर्क आगे आता है-यदि धागों में कपड़ा नहीं है, तो जैसे धागों में नहीं है, वैसे मट्टी के डलों में भी नहीं है। धागों और डलों में कपड़े का समान रूप से अभाव है। तो जैसे धागों से कपड़ा उत्पन्न होता है, वैसे डलों से क्यों नहीं होता? यदि डलों से नहीं होता, तो धागों से भी नहीं होना चाहिये। पर व्यवहार में ऐसा नहीं देखा जाता। हम जानते और देखते हैं, कपड़ा धागों से बनता है, डलों से नहीं। स्पष्ट है कि जहाँ जो वस्तु है, वहीं से निकलेगी। इससे धागों में कपड़े की विद्यमानता जानी जाती है। फलतः अपने प्रकट होने से पहले भी कार्य कारण में विद्यमान रहता है।

असत्कार्यवाद का यहाँ कहना है-यदि कार्य की सत्ता पहले से है, तो उसके लिये प्रयत्न क्यों किया जाता है? सत्कार्यवाद का उत्तर है-कारणों में छिपे हुए (अन्तर्हित) कार्य को प्रकट करने के लिये प्रयत्न किया जाता है, परन्तु असत्कार्यवाद इसका क्या समाधान करता है? कि कपड़ा बनाने के लिये धागों का ही क्यों संग्रह किया जाता है, डलों का क्यों नहीं? तथा घड़ा बनाने के लिये डलों का ही क्यों संग्रह किया जाता है, धागों का क्यों नहीं? जबकि दोनों जगह कार्यों का अभाव समान रूप से विद्यमान रहता है। इस संघर्ष का समाधान महर्षि गौतम ने न्यायदर्शन के एक सूत्र (४/१/५०) द्वारा किया-

''बुद्धिसिद्धन्तु तदसत्।''

वह कार्य जो उत्पत्ति से पूर्व असत् कहा जाता है, वस्तुतः उसका अस्तित्व बुद्धिसिद्ध रहता है। इसका अभिप्राय है-एक व्यवस्था देखी जाती है कि नियत कारणों से ही कोई कार्य-विशेष उत्पन्न होता है। प्रत्येक कार्य प्रत्येक कारण से उत्पन्न नहीं होता। इससे यह परिणाम निकलता है कि कार्य का निर्माता अपनी बुद्धि द्वारा इस स्थिति को जानता है कि इन कारणों से अमुक कार्य उभर सकता या उत्पन्न हो सकता है। कार्य की आकृति लम्बाई, चौड़ाई, गोलाई, छोटाई, बड़ाई आदि प्रत्येक स्वरूप का उसे ज्ञान है कि इस कारण से मैंने इस-इस प्रकार का कार्य बनाना या प्रकट करना है। वह उस कार्य के नियत स्वरूप को उन कारणों में अन्तर्हित जानता है। कारणों में छिपा हुआ कार्य का स्वरूप उसे अभिव्यक्त है, उसी नियत धारणा के साथ वह प्रयत्न करता है और जोड़-तोड़ तथा काट-छांट कर उसी धारणा के अनुसार कार्य प्रकट में आ जाता है। यदि ऐसा न हो, तो कभी कोई नियत अवयव- सन्निवेश का कार्य उभार में नहीं आ सकता। फिर तो 'नारदं कुर्वाणो वानरं चकार' वाली कहावत ही सामने आयेगी।

कार्य-कारण की इस परिस्थिति को गम्भीरता से समझने पर यह परिणाम स्पष्ट होता है कि गौतम के विचार के अनुसार भी कारण में कार्य का अस्तित्व 'स्व' रूप से तो नहीं, पर निर्मातृबुद्धि द्वारा उसकी रूप-रेखा का निश्चय कारणों के रूप में अवश्य रहता है। यदि यह वर्णन यथार्थ है तो विरोध की परिस्थिति यहाँ आकर अपना दम तोड़ जाती है। सत्कार्यवाद में भी कार्य के प्रकट होने से पहले कार्य के अभिव्यक्त 'स्व' रूप के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता, प्रत्युत अनभिव्यक्त कार्यरूप ही कारणरूप में अन्तर्हित माना जाता है। इस प्रकार वस्तु तत्त्व के वर्णन करने की रीति में भले ही कुछ अन्तर हो, पर मन्तव्य अर्थ लगभग एक स्तर पर आ जाता है।

अन्य भी अनेक दार्शनिक विषयों व सिद्धान्तों पर प्रकाश डालकर महर्षि दयानन्द ने उनकी यथार्थ दिशा को समझने का प्रयास किया है। जीवात्मा-परमात्मा का भेद, जगत् के उपादान और निमित्त कारणों का एक न होना, सांख्य की प्रकृति और वैशेषिक के परमाणु का जगत्सर्ग की प्रक्रिया में स्थान, मोक्ष से पुनरावर्तन आदि ऐसे ही सिद्धान्त हैं।

महर्षि प्रदर्शित दार्शनिक विचारों की छाया में दर्शन शास्त्र का अध्ययन, वैदिक दर्शनों के तथाकथित विरोध की भावना को परास्त कर उनके पारस्परिक सहयोग की भावना को उभारता है। इसी रूप में इन छः वैदिक दर्शनों के व्याख्यान 'दयानन्द दर्शन' है। इस नाम से किसी अतिरिक्त दर्शन की कल्पना ऋषि के साथ अन्याय होगा। ऋषि ने इन्हीं दर्शनों को प्रमाण मान अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर उल्लिखित किया है, पर उन्हीं सिद्धान्तों के साथ, जो ऋषि ने इन दर्शनों के आधार पर प्रकट किये हैं।

●●●

मृत्यु पर विजय

-प्रियांशु सेठ

हम सभी को ज्ञात है कि जो इस सृष्टि में जन्म लिया है उसे एक दिन मरना ही होगा। यही सृष्टि का नियम है किन्तु क्या मृत्यु पर भी विजय प्राप्त किया जा सकता है? यह प्रश्न स्वामी दयानन्द जी की भी आत्मकथा का एक हिस्सा है तो आइए पढ़ें कि किस प्रकार स्वामी जी का उद्देश्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करना हो गया था?

भारत की संस्कृति वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है। यहां गुणों के आधार पर वितरण होता है। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही वर्ण उसे मिल जाता है। इसी प्रकार यहां आश्रम व्यवस्था भी सृष्टि के आदिकाल से चली आ रही है। २५ साल तक ब्रह्मचारी, फिर २५ से ५० तक गृहस्थी और ५० से ७५ तक वानप्रस्थ और उसके बाद संन्यास आश्रम। ये चारों आश्रम जीवन के आधार हुआ करते थे। लेकिन संन्यास आश्रम के बारे में कहा जाता है कि यह तभी सार्थक है, जब वैराग्य उत्पन्न हो जाए और यदि वैराग्य बचपन या जवानी में भी उत्पन्न हो जाए तो व्यक्ति तभी संन्यासी बन सकता है। वैराग्य होने पर संन्यासी बनने के लिए ७५ साल की उम्र होना आवश्यक नहीं है। वैराग्य क्यों, कब और कैसे या किन कारणों से पैदा हो जाए कहा नहीं जा सकता। वैराग्य का मतलब यही है कि व्यक्ति मोह-माया के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता वह तो अपने उत्थान की सोचता है और मोक्ष का परम पद पाना चाहता है। इसी प्रकार के वैराग्य में न जाने कितने लोगों ने भगवा चोला धारण किया, लेकिन स्वामी दयानन्द एक अकेले ऐसे महापुरुष थे, जो वैराग्य होने पर अपना ही कल्याण नहीं चाहते थे, वरन सारी दुनिया का कल्याण चाहते थे। उन्हें नहीं चाहिए था ऐसा मोक्ष जिसके वे अकेले अधिकारी बनें, वे तो सबका कल्याण चाहते थे। लेकिन प्रश्न यह है कि उन्हें वैराग्य हुआ कैसे? क्या कारण थे वे?

तो हम पहले इसी पर चर्चा करेंगे।

एक बार की बात है जब मूलशंकर (स्वामी दयानन्द जी का बचपन का नाम) के घर में दो मौतें हुईं। इन दो मौतों ने उनमें मृत्यु से बचने के लिए अमृत की तलाश के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। उसकी छोटी बहन का विशूचिका से प्राणान्त हो गया। बहन की मृत्यु के समय वह उसके सम्मुख उपस्थित था। कदाचित् उसने मृत्यु के समय बहन के कष्ट को देखा होगा। वह उसके तड़फड़ाने को देखकर स्वयं दुःखी हुआ होगा।

बाद में अपने स्वरचित जीवन-चरित्र में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है,"उस भगिनी के वियोग का शोक मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से हृदय में बड़ा आघात लगा। जब परिवार के लोग मेरे चारों ओर खड़े क्रंदन-विलाप कर रहे थे, मैं पत्थर की मूर्ति के समान अविचलित चिंता में डूबा हुआ था। मनुष्य की क्षण-भंगुरता की बात सोचकर अपने मन में कह रहा था कि जब पृथ्वी पर सबको ही इस प्रकार मरना है, तो मैं भी एक दिन मरूंगा। कोई ऐसा स्थान भी है या नहीं, जहां जाकर मृत्यु-समय की यंत्रणा से रक्षा हो सके तथा मुक्ति का उपाय मिल सके।"

बहन की मृत्यु के समय मूलशंकर के मन में यह संकल्प बना कि वह मृत्यु से बचने का उपाय ढूंढेगा। इसके कुछ दिन बाद ही उसके चाचा की भी मृत्यु हो गई। चाचा-भतीजा अपने मन की बातें परस्पर किया करते थे। चाचा की मृत्यु पर मूलशंकर इतना रोया कि उसकी आंखें सूजकर लाल हो गयीं। जबकि बहन की मृत्यु पर एक आंसू भी न निकल था, इस कारण उस दिन उसे पत्थर हृदय भी कहा गया था।

चाचा की तेरहवीं के दिन मूलशंकर ने पंडित जी से पूछा, "पंडित जी, क्या हर किसी को मरना पड़ता है?"

पंडित जी- "हां बेटा! जो इस संसार में पैदा होता है, उसे एक-न-एक दिन मरना ही पड़ता है।"

मूलशंकर- "तो क्या मृत्यु से बचा नहीं जा सकता?"

पंडित जी- "बचा तो जा सकता है।"

मूलशंकर- "कैसे?"

पंडित जी- "अमर होकर।"

मूलशंकर- "अमर कैसे हुआ जाता है?"

पंडित जी- "अमर फल या अमृत खाकर।"

मूलशंकर- "वह कहां मिलेगा?"

पंडित जी- "वह तो अब अब धरती पर नहीं है।"

मूलशंकर- "तो क्या दूसरा उपाय या विकल्प नहीं?"

पंडित जी- "है तो सही।"

मूलशंकर- "क्या?"

पंडित जी- "योग-साधना।"

मूलशंकर- "क्या आप मुझे योग साधना करना सिखाएंगे?"

पंडित जी- "योग साधना हम या तुम जैसे साधारण व्यक्तियों के वश की बात हीं।"

मूलशंकर- "तो फिर?"

पंडित जी- "यह तो बड़े-बड़े योगियों-संत-महात्माओं के वश की बात है।"

मूलशंकर- "वे कहां मिलेंगे?"

पंडित जी- "भयंकर जंगलों में या फिर हिमालय पर्वत की बर्फ से ढकी अज्ञात गुफाओं में।"

आगे उसने कुछ प्रश्न नहीं किया, लेकिन पिता अपने पुत्र व पुरोहित का वार्तालाप सुन रहा था। पिता ने कुछ समय बाद सोचा कि विवाह कर दो, अपने आप ही फंस जाएगा। जब मूलशंकर के विवाह की चर्चा शुरू हुई तो, चारों ओर से उसके लिए रिश्ते आने लगे। अंततः एक गुणी लड़की से विवाह तय हो गया, पर जब विवाह के दिन निकट आए तो मूल ने और किसी तरह छुटकारा न देख, भाग जाने की ठानी, और वह एक दिन समय पाकर भाग खड़ा हुआ।

मूलशंकर के घर से भाग जाने से सभी लोग बड़े परेशान हुए। करसन जी ने बहुत खोज कराई। सब ओर सिपाही भेजे गए। अंत में एक महन्त के बताने पर मूलशंकर का पता लग गया और वे सिद्धपुर के मेले में पकड़े गए।

पिता ने क्रोध में उसे कहना शुरू किया, "कुलघातक! मातृ-हन्ता! तुम बहुत बिगड़ गए हो। बताओ क्यों भाग आये थे घर से?"

मूलशंकर- "मैं..."

पिताजी- "मैं...मैं क्या करता है, क्या किसी चीज की कमी थी घर में?"

मूलशंकर- "जी नहीं घर में किसी भी चीज की कमी नहीं थी।"

पिताजी- "फिर भागे क्यों थे?"

वे तो सोच में पड़ गए कि अब क्या जवाब दें, इसलिए मूलशंकर ने नम्रता और क्षमा-याचना के भाव में कह दिया, "पिताजी! भूल हो गयी है। किसी ने बरगला दिया था। अब ऐसी गलती नहीं होगी।"

पिताजी- "सच कह रहे हो।"

मूलशंकर- "सच्ची।"

पिताजी- "खाओ गौमाता की कसम।"

मूलशंकर जी गाय का बहुत आदर करते थे, अब कसम कैसे खाएं, सो कह दिया, "यह बीच में गौमाता की कसम कहां से आ गई?"

पिताजी- "ठीक है, तो अब घरलौट चलोगे न?"

मूलशंकर- "जी...मैं तो खुद ही आने वाला था।"

पिताजी- "खुद ही आने वाला था, लेकिन देखने से तो नहीं लगता, अभी भी दृष्टि नहीं मिला पाते।"

मूलशंकर- "मैं अपनी करतूत पर शर्मिंदा हूँ।"

पिताजी- "ठीक है।"

करसन जी ने मूलशंकर को साथ लिया और अपने खेमे में सिपाहियों के पहरे में रख दिया। रात होने पर मूलशंकर लेट गया और वह सोने का बहाना करता रहा। सिपाही रात बहुत देर तक पहरा देते रहे। पर अंततः उन्हें झपकी आ गई तो मूलशंकर चुपके से उठा और समीप रखे लोटे को उठाकर शौच करने के बहाने वहां से चल पड़ा। वह अहमदाबाद की ओर चल पड़ा। अहमदाबाद से वह बड़ौदा पहुंचा। बड़ौदा में वह चेतन मठ के ब्रह्मचारियों और संन्यासियों की संगति में पहुंचा, "देव! मैं भी ब्रह्मचारी रहकर ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।"

स्वामी जी- "यह बहुत कठिन मार्ग है। आज के युग में ब्रह्मचारी भला कौन बनना चाहता है।"

मूलशंकर- "आप हैं और मैं बनना चाहता हूँ।"

स्वामी जी- "लेकिन इस मार्ग पर चलना बहुत कठिन है बालक।"

मूलशंकर- "हर मार्ग ही कठिन होता है।"

स्वामी जी- "नारी के साये से भी दूर रहना होगा।"

मूलशंकर- "एक ब्रह्मचारी का नारी से क्या काम!"

स्वामी जी- "क्या संयम से रह पाओगे?"

मूलशंकर- "आप भी तो रह रहे हैं।"

स्वामी जी- "मेरी बात और है।"

मूलशंकर- "मेरी भी बात और है।"

स्वामी जी- "क्या बात है आपकी?"

मूलशंकर- "मैं ज्ञान पाना चाहता हूं, अमर होना चाहता हूँ और लोगों का कल्याण करना चाहता हूँ और इसलिए ब्रह्मचारी रहकर अपने साधना पथ पर आगे बढ़ना चाहता हूँ।"

स्वामी जी- "बहुत अच्छी बात है, आज के युग में धर्म का पतन हो गया है। धर्म के उत्थान के लिए लोगों, किशोरों और युवाओं को आगे आना होगा, लेकिन किशोर और युवा तो पाश्चात्य संस्कृति के रंगों में रंग रहे हैं, वे भला देश और धर्म की चिंता कहां करते हैं। लेकिन एक बात पूंछू बालक?"

मूलशंकर- "पूछो देव!"

स्वामी जी- "तुम यह सब क्यों करना चाहते हो? तुम हो कौन? तुम घर से भाग आये तो क्या तुम्हारे माता-पिता परेशान नहीं हो रहे होंगे।"

मूलशंकर- "बड़ा कठिन प्रश्न किया आपने, क्या कोई सरल प्रश्न नहीं पूछ सकते थे?"

स्वामी जी- "यह कठिन प्रश्न कैसे लगा?"

मूलशंकर- "इसलिए कि मैं कौन हूँ, इसी की खोज में तो निकला हूँ और जब मुझे यही पता नहीं कि मैं कौन हूँ तो फिर मेरे माता-पिता चिंता कर रहे हैं या नहीं इसकी चिंता मैं क्यों करूं।"

स्वामी जी- "बहुत अच्छे, तुम सच्चे जिज्ञासु हो, तुम जैसे साधकों की ही देश को आज सख्त जरूरत है।" और फिर मूलशंकर ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते हुए वहां रहकर वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने लगा।

कुछ काल बाद उन्होंने एक संन्यासी से पूछा, "मृत्यु पर विजय कैसे पाई जा सकती है महात्मन्।"

संन्यासी- "यह तो बहुत कठिन प्रश्न है, बालक।"

मूलशंकर- "क्या आपको इस विषय में कुछ नहीं पता।"

संन्यासी- "नहीं बात ऐसी भी नहीं है।"

मूलशंकर- "तो फिर कैसी है?"

संन्यासी- "दरअसल योग ही वह रास्ता है, जिस पर चलकर मनुष्य मृत्यु पर भी वजय पा सकता है।"

मूलशंकर- "वह कहां सीखा जा सकता है। कहां मिलेंगे योग सिखाने वाले योगी और महात्मा।"

संन्यासी- "चणोद, कर्णाली में ऐसे योगी आते रहते हैं।"

इस प्रकार की बातें जानकर मूलशंकर कुछ काल बाद मृत्यु-विजय की खोज में

वहां से चणोद, कर्णाली की ओर चल पड़ा। वह योग से अमर बनना चाहता था।

वहां उन्होंने कई ब्रह्मचारियों, चिदानंद प्रभृति संन्यासियों और कई योग-दीक्षित साधु-महात्माओं के दर्शन किये। कई दिन तक शास्त्रालाप चला, एक झलक देखिए-

साधु- "तुम योगी क्यों बनना चाहते हो?"

मूलशंकर- "मैं अमर होना चाहता हूँ।"

साधु- "जो पैदा हुआ है, उसे एक न एक दिन मरना ही होता है।"

मूलशंकर- "लेकिन मैंने सुना है कि योग से अमर हो सकता है आदमी।"

साधु- "तुमने गलत सुना है।"

मूलशंकर- "आपकी बात पर विश्वास कैसे करूं?"

साधु- "देखो विश्वास करो या नहीं, लेकिन पैदा हुआ है तो मरना भी पड़ेगा यही सृष्टि का नियम है।"

मूलशंकर- "फिर योग के लाभ क्या हैं?"

साधु- "योग से व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है और उसी को कहते हैं कि व्यक्ति अमर हो गया।"

मूलशंकर- "अर्थात्।"

साधु- "देखो यह सही है कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार लंबी आयु तक जीवित रह सकता है लेकिन कोई यह कहे कि योग सीखने से मृत्यु कभी नहीं आती तो यह मिथ्या है।"

मूलशंकर- "आप कैसे कह सकते हैं यह मिथ्या है?"

साधु- "अच्छा कोई ऐसा आदमी मुझे दिखा दो जो सदियों से जीवित हो? क्या किसी ऐसे आदमी को जानते हो?"

मूलशंकर- "नहीं मैं तो नहीं जानता और जब जानता ही नहीं तो फिर दिखा कैसे सकता हूँ।"

साधु- "देखो यह दुनियां अरबों वर्षों पूर्व से है, यदि योग से व्यक्ति अमर हो सकता तो आपको आज अरबों योगी मिल जाते, यूं भटकना न पड़ता।

योग से मुक्ति सम्भव है, जन्म-मरण का ज्ञान जिसे हो जाता है, उसी को अमरता कहते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, शास्त्र क्या मानते हैं, मुझे नहीं पता, क्योंकि शास्त्रों में आजकल बहुत मिलावट हो गई, दूध में पानी की तरह।"

इस प्रकार शास्त्रार्थ के बाद एक दिन वह परमात्मा परमहंस के पास गया और उनसे शिक्षा देने की प्रार्थना की। कुछ मास में ही उन्होंने वेदान्त-सार और वेदान्त परिभाषा के ग्रन्थों को पढ़ डाला।

कर्णाली में ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य ने संन्यासधर्म की दीक्षा ली। तब मूलशंकर का नाम दयानन्द सरस्वती हो गया। इनसे दयानन्द जी ने बहुत-सी योग-क्रियाएं सीखीं, पर इन योग क्रियाओं से उन्हें संतुष्टि नहीं मिली, इसलिए वे सच्चे योगी की खोज में निकल पड़े। और ऐसे योगी की खोज में भ्रमण करते रहे, जो उनकी मृत्यु को जीतने का उपाय बता सके। इस खोज में वे आबूगिरि, हरिद्वार, ऋषिकेश, टिहरी, श्रीनगर, केदारनाथ, रुद्र प्रयाग, अगस्त्य आश्रम, शिवपुरी, गुप्त काशी, गौरी कुण्ड भीम गुफा, त्रिपुणी नारायण इत्यादि स्थानों पर गए। दो वर्ष तक वह उत्तराखण्ड में किसी सिद्ध योगी की खोज में घूमते रहे।

जीवन से निराश-सा हो रहे थे कि दयानन्द में मरने से बचने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। अब उनका लक्ष्य ज्ञान से ईश्वर प्राप्ति का हो गया था। दयानन्द को विश्वास हो गया था कि योग से मृत्यु पर विजय नहीं प्राप्त हो सकती। मृत्यु तो होगी ही, परन्तु मृत्यु के दुःख से निवृत्ति ज्ञान द्वारा होगी। अतः अब उनका भ्रमण किसी ज्ञानी पुरुष की खोज में प्रारम्भ हुआ।

पुनर्जन्म सिद्धान्त समीक्षा

प्रश्न- पुनर्जन्म किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मा और इन्द्रियों का शरीर के साथ बार बार सम्बन्ध टूटने और बनने को पुनर्जन्म या प्रेत्याभाव कहते हैं ।

प्रश्न- प्रेत किसे कहते हैं ?

उत्तर- जब आत्मा और इन्द्रियों का शरीर से सम्बन्ध टूट जाता है तो जो बचा हुआ शरीर है, उसे शव या प्रेत कहा जाता है ।

प्रश्न- भूत किसे कहते हैं ?

उत्तर- जो व्यक्ति मृत हो जाता है, वह क्योंकि अब वर्तमान काल में नहीं है और भूतकाल में चला गया है ।इसी कारण वह भूत कहलाता है ।

प्रश्न- पुनर्जन्म को कैसे समझा जा सकता है ?

उत्तर- पुनर्जन्म को समझने के लिये आपको पहले जन्म और मृत्यु के बारे मे समझना पड़ेगा । और जन्म मृत्यु को समझने से पहले आपको शरीर को समझना पड़ेगा ।

प्रश्न- शरीर के बारे में समझाएँ !?

उत्तर- शरीर दो प्रकार का होता है ।

(१) सूक्ष्म शरीर (मन, बुद्धि, अहंकार, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ) और (२) स्थूल शरीर (५ कर्मेन्द्रियाँ = नासिका, त्वचा, कर्ण आदि बाहरी शरीर) । और इस शरीर के द्वारा आत्मा कर्मों को करता है ।

प्रश्न- जन्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- आत्मा का सूक्ष्म शरीर को लेकर स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध हो जाने का नाम जन्म है । और ये सम्बन्ध प्राणों के साथ दोनों शरीरों में स्थापित होता है ।जन्म को जाति भी कहा जाता है (उदाहरण ! पशु जाति, मनुष्य जाति, पक्षी जाति, वृक्ष जाति आदि आदि जातियां) ।

प्रश्न- मृत्यु किसे कहते हैं ?

उत्तर- सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच में प्राणों का सम्बन्ध है ।उस सम्बन्ध के टूट जाने का नाम मृत्यु है ।

प्रश्न- मृत्यु और निद्रा में क्या अंतर है ?

उत्तर- मृत्यु में दोनों शरीरों के सम्बन्ध टूट जाते हैं और निद्रा में दोनों शरीरों के सम्बन्ध स्थापित रहते हैं ।

प्रश्न- मृत्यु कैसे होती है ?

उत्तर- आत्मा अपने सूक्ष्म शरीर को पूरे स्थूल शरीर से समेटता हुआ किसी एक द्वार से बाहर निकलता है । और जिन जिन इन्द्रियों को समेटता जाता है वे सब निष्क्रिय होती जाती हैं । अतः तभी हमसब देखते हैं कि मृत्यु के समय बोलना, दिखना, सुनना सब बंद होता चला जाता है ।

प्रश्न- जब मृत्यु होती है तो हमें कैसा लगता है ?

उत्तर- ठीक वैसा ही जैसा कि हमसबको बिस्तर पर लेटे लेटे नींद में जाते हुए लगता है । हमसब ज्ञान शून्य होने लगते हैं ।

यदि मान लिया जाए कि हमारी मृत्यु स्वाभाविक नहीं है और कोई तलवार से धीरे धीरे गला काट रहा है तो पहले तो निकलते हुए रक्त और तीव्र पीड़ा से हमें तुरंत मूर्छा आने लगेगी और हम ज्ञान शून्य हो जायेंगे और ऐसे ही हमारे प्राण निकल जायेंगे ।

प्रश्न- मृत्यु और मुक्ति में क्या अंतर है ?

उत्तर- जीवात्मा को बार बार कर्मो के अनुसार शरीर प्राप्त करने के लिये सूक्ष्म शरीर मिला हुआ होता है । जब सामान्य मृत्यु होती है तो आत्मा सूक्ष्म शरीर को लेकर उस स्थूल शरीर (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) से निकल जाता है । परन्तु जब मुक्ति होती है तो आत्मा स्थूल शरीर (मनुष्य) को तो छोड़ता ही है, लेकिन ये सूक्ष्म शरीर भी छोड़ देता है और सूक्ष्म शरीर प्रकृत्ति में लीन हो जाता है । (मुक्ति केवल मनुष्य शरीर में योग, समाधि आदि साधनों से ही होती है।)

प्रश्न- मुक्ति की अवधि कितनी है ?

उत्तर- मुक्ति की अवधि ३६००० सृष्टियाँ हैं ।

१. सृष्टि= ८,६४,००,००,००० वर्ष । यानी कि इतनी अवधि तक आत्मा मुक्त रहता है और ब्रह्माण्ड में ईश्वर के आनंद में मग्न रहता है । और ये अवधि पूरी करते ही किसी शरीर में कर्मानुसार फिर से आता है ।

प्रश्न- मृत्यु की अवधि कितनी है ?

उत्तर- एक क्षण के कई भाग कर दीजिए । उससे भी कम समय में आत्मा एक शरीर को छोड़कर तुरन्त दूसरे शरीर को धारण कर लेता है ।

प्रश्न- जन्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- ईश्वर के द्वारा जीवात्मा अपने सूक्ष्म शरीर के साथ कर्म के अनुसार किसी माता के गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है और वहाँ बन रहे रज वीर्य के संयोग से शरीर को प्राप्त कर लेता है ।इसी को जन्म कहते हैं ।

प्रश्न- जाति किसे कहते हैं ?

उत्तर- जन्म को जाति कहते है ।कर्मों के अनुसार जीवात्मा जिस शरीर को प्राप्त होता है वह उसकी जाति कहलाती है। जैसे कि मनुष्य जाति, पशु जाति, वृक्ष जाति, पक्षी जाति आदि ।

प्रश्न- ये कैसे निश्चय होता है कि आत्मा किस जाति को प्राप्त होगा ?

उत्तर- ये कर्मों के अनुसार निश्चय होता है ।

ऐसे समझिए ! आत्मा में अनंत जन्मों के अनंत कर्मों के संस्कार अंकित रहते हैं । ये कर्म अपनी एक कतार में खड़े रहते हैं। जो कर्म आगे आता रहता है, उसके अनुसार आत्मा कर्मफल भोगता है ।

मान लीजिए कि आत्मा ने कभी किसी शरीर में ऐसे कर्म किये हों जिसके कारण उसे सूअर का शरीर मिलना हो । और ये सूअर का शरीर दिलवाने वाले कर्म कतार में सबसे आगे खड़े हैं, तो आत्मा उस प्रचलित शरीर को छोड़ तुरन्त किसी सूअरिया के गर्भ में प्रविष्ट होगी और सूअर का जन्म मिलेगा ।अब आगे चलिये । सूअर के शरीर को भोगकर जब आत्मा के वे कर्म निवृत होंगे तो कतार में उससे पीछे मान लो भैंस का शरीर दिलाने वाले कर्म खड़े हो गएं, तो सूअर के शरीर में मरकर आत्मा भैंस के शरीर को भोगेगा । बस ऐसे ही समझते जाइए कि कर्मों की कतार में एक के बाद एक, एक के बाद एक से दूसरे शरीर में पुनर्जन्म होता रहेगा ।

यदि ऐसे ही आगे किसी मनुष्य शरीर में आकर वो अपने जीवन की उपयोगिता समझकर योगी हो जायेगा तो कर्मो की कतार को ३६,००० सृष्टियों तक के लिये छोड़ देगा । उसके बाद फिर से ये क्रम सब चालू रहेगा ।

प्रश्न- लेकिन हमसब देखते हैं कि एक ही जाति में पैदा हुई आत्माएँ अलग अलग रूप में सुखी और दुखी हैं ।ऐसा क्यों ?

उत्तर- ये भी कर्मों पर आधारित हैं । जैसे किसी ने पाप पुण्य रूप में मिश्रित कर्म किये और उसे पुण्य के आधार पर मनुष्य शरीर तो मिला, परन्तु वह पाप कर्मों के आधार पर किसी ऐसे कुल मे पैदा हुआ जिसमें उसे दुख और कष्ट अधिक झेलने पड़ें । आगे ऐसे समझिए कि जैसे किसी आत्मा ने किसी शरीर में बहुत से पाप कर्म और कुछ पुण्य कर्म किए। जिस पाप के आधार पर उसे गाय का शरीर मिला और पुण्यों के आधार उस गाय को ऐसा घर मिला जहाँ उसे उत्तम सुख जैसे कि भोजन, चिकित्सा आदि प्राप्त हुए।

ठीक ऐसे ही कर्मों के मिश्रित रूप में शरीरों का मिलना तय होता है।

प्रश्न- जो आत्मा है उसकी स्थिति शरीर में कैसे होती है ? क्या वो पूरे शरीर में फैलकर रहती है या शरीर के किसी स्थान विशेष में ?

उत्तर- आत्मा एक सुई की नोक के करोड़वें हिस्से से भी अत्यन्त सूक्ष्म होती है और वह शरीर में हृदय देश में रहती है । वहीं से वो अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा स्थूल शरीर का संचालन करती है । आत्मा पूरे शरीर में फैली नहीं होती या कहें कि व्याप्त नहीं होती । क्योंकि मान लें कि कोई आत्मा किसी हाथी के शरीर को धारण किये हुए है, और उसे त्यागकर मान लीजिए कि उसे कर्मानुसार चींटी का शरीर मिलता है । तो सोचिए वह आत्मा उस चींटी के शरीर में कैसे घुसेगी ? इसके लिये तो उस आत्मा की पर्याप्त काट छांट करनी होगी, जो कि शास्त्र विरुद्ध सिद्धांत है । कोई भी आत्मा काटा नहीं जा सकता । ये बात वेद, उपनिषद्, गीता आदि भी कहते हैं ।

प्रश्न- लोग मृत्यु से इतना डरते क्यों हैं ?

उत्तर- अज्ञानता के कारण ।

क्योंकि यदि लोग वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि का स्वाध्याय करके शरीर और आत्मा आदि के ज्ञान विज्ञान को पढ़ेंगे तो उन्हें सारी स्थिति समझ में आ जायेगी । लेकिन इससे भी ये मात्र शाब्दिक ज्ञान होगा । यदि लोग ये सब पढ़कर अध्यात्म में रूचि लेते हुए योगाभ्यास आदि करेंगे तो, ये ज्ञान उनको भीतर से होता जायेगा और वे निर्भयी होते जायेंगे । आपने महापुरुषों के बारे में सुना होगा कि जिन्होंने हँसते हँसते अपने प्राण दे दिए । ये सब इसलिये कर पाएं, क्योंकि वे लोग तत्वज्ञानी थें, जिसके कारण मृत्यु भय जाता रहा ।

सोचिए ! महाभारत के युद्ध में अर्जुण भय के कारण शिथिल हो गयें थें तो योगेश्वर श्रीकृष्ण जी ने ही उनको सांख्य योग के द्वारा ये शरीर, आत्मा आदि का ज्ञान विज्ञान ही तो समझाया था और उन्हें निर्भयी बनाया था । सामान्य मनुष्य को तो अज्ञान में ये भय रहता ही है ।

प्रश्न- क्या वास्तव में भूत प्रेत नहीं होते ? और जो हम ये किसी महिला के शरीर में चुड़ैल या दुष्टात्मा आ जाती है वो सब क्या झूठ है ?

उत्तर- झूठ है । लीजिए इसको क्रम से समझिए । पहली बात तो ये है कि किसी एक शरीर का संचालन दो आत्माएँ कभी नहीं कर सकतीं । ये सिद्धांत विरुद्ध और ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है । तो किसी एक शरीर में दूसरी आत्मा का आकर उसे अपने वश में कर लेना संभव ही नहीं है। और जो आपने बोला कि कई महिलाओं में जो डायन या चुड़ैल आ जाती है, जिसके कारण उनकी आवाज तक बदल जाती है तो वो किसी दुष्टात्मा के कारण नहीं, अपितु मन के पलटने की स्थिति के कारण होता है । विज्ञान की भाषा में इसे Multiple Personality Disorder कहते हैं । जिसमें एक व्यक्ति परिवर्तित होकर अगले ही क्षण दूसरे में बदल जाता है । ये एक मानसिक रोग है ।

प्रश्न- पुनर्जन्म का साक्ष्य क्या है ? ये सिद्धांतवादी बातें अपने स्थान पर हैं । परन्तु इसके प्रत्यक्ष प्रमाण क्या हैं ?

उत्तर- आपने ढेरों ऐसे समाचार सुने होंगे कि किसी घर में कोई बालक पैदा हुआ और वह थोड़ा बड़ा होते ही अपने पुराने गाँव, घर, परिवार और उन सदस्यों के बारे में पूरी जानकारी बताता है ! जिनसे उसका प्रचलित जीवन में दूर दूर तक कोई संबन्ध नहीं रहा है । और ये सब पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । सुनिए ! होता ये है कि जैसा आपको ऊपर बताया गया है कि आत्मा के सूक्ष्म शरीर में कर्मो के संस्कार अंकित होते रहते हैं और किसी जन्म में कोई अवसर पाकर वे उभर आते हैं । इसी कारण वह मनुष्य अपने पुराने जन्म की बातें बताने लगता है । लेकिन ये स्थिति सबके साथ नहीं होती । क्योंकि करोड़ों में कोई एक होगा जिसके साथ ये होता होगा कि अवसर पाकर उसके कोई दबे हुए संस्कार उग्र हो गए और वह अपने बारे में बताने लगा ।

-अज्ञात

निर्वाचन

आर्य समाज हस्तिनापुर का निर्वाचन

प्रधान :: श्री जगत सिंह

मंत्री :: श्री मनोज कुमार

कोषाध्यक्ष :: श्री मनवीर सिंह

ईसाई मिशन्स और भारत

-डॉ. विवेक आर्य

ईसाई धर्मवेत्ताओं, विद्वानों, मिशनरीयों और लेखकों के यीशु ख्रिस्त Jesus Christ, विषयक सदीयों से बडे-बडे दावों के बावजूद, योरोप और अमरिका के बुद्धिजीवी वर्ग ने ईसाई विश्वास के यीशु ख्रिस्त का स्वीकार करने से मना कर दिया है। आज-कल वहाँ उपन्यासों के कल्पित यीशु Jesus of Fiction, का ही बोल-बाला है। भारतविद्याविद् डॉ० कोनराड एल्स्ट का कहना है कि पश्चिम में, विशेषकर योरोप में, ईसाईयत की लोकप्रियता और वहाँ के चर्चों में ईसाई विश्वासीयों की उपस्थिति निरन्तर कम होती जा रही है। वहाँ के समाज में पादरी के व्यवसाय के प्रति दिलचस्पी का अभाव भी चिंता का विषय बन गया है। योरोप में केथोलिक पादरीयों की एवरेज वय ५५ साल हैय नेदरलैंड में यह ६२ है, और बढती ही जा रही है। वास्तविकता यह है कि योरोप और अमरिका के आधुनिक लोगों की ईसाईयत में अब कोई रूचि नहीं रही है।

आर्थर जे. पाईस का कहना है कि बदले हुए परिवेश में पादरीयों की भूमिकाएं भी बदल गई है। भूतकाल में पश्चिम के ईसाई पादरी पूर्व के देशों में अपने मत का प्रचार-प्रसार करने आते थे, और आज भारत के पादरी पश्चिम में जा रहे है - ईसाई मत का प्रचार-प्रसार करने के लिए नहीं, परन्तु वहाँ की ईसाई संस्थाओं को बंद होने से बचाने के लिए, चालु स्थिति में रखने के लिए। वहाँ के चर्चों, स्कूलों, अस्पतालों, जेलों और रिहेबिलीटेशन केन्द्रों में धार्मिक शिक्षा और काउंसेलिंग देने ले लिए पूर्व के पादरीयों की भारी मांग रहती है। अमरिका में भारतीय ननों की भी भारी मांग रहती है। ज्यादातर नन जो अमरिका जाती है और वहाँ के शिकागो आदि शहरों के स्लम एरिया में कार्य करती है वे मदर टेरेसा के कोन्वेन्ट्स की ही होती है। पाईस कहते है कि केथोलिसिज्म ख्ब्जीवसपबपेउ, भारत जैसे विकसित देशों में आज भी एक शक्तिशाली तन्त्र है, जबकि उपभोक्तावादी पश्चिम में समय के साथ-साथ उसकी ताकत कम होती जा रही है। समग्र योरोप में असंख्य भव्य चर्च आज खण्डहर बन चुके है। कई चर्चों का रखरखाव करने वाला आज वहाँ कोई नहीं है। कई चर्च गैर-ईसाईयों को बेचे जा चुके है, जिन्होंने इन चर्चों को अपने पूजा-स्थलों और व्यापार केन्द्रों में परिवर्तित कर दिए है। (The Sunday Observer, नई दिल्ली, १६-२२ जनवरी १९९४)

ऐसा क्यों हुआ? कारण स्पष्ट है। योरोपीयन ईसाईयों का ईसाईयत से मोहभंग हो चुका है। योरोप और अमरिका के ज्यादातर लोग, जो ईसाईयत को छोड चुके है, आज महसूस कर रहे है कि ऐसा करके उन्होंनें कुछ भी खोया नहीं है। वे लोग जान चुके है कि यीशु ख्रिस्त परमेश्वर का एक-मात्र पुत्र नहीं था, उसने मानवता को शास्वत पाप से बचाया नहीं है, और इस लोक और परलोक में हमारे जीवन का सुख ईसाईयत की किसी भी मौलिक मान्यता पर निर्भर नहीं करता। वास्तव में, पश्चिमी जगत को आज ''ईसाई पश्चिम'' कहकर पुकारना ही गलत है, लेकिन ईसाई मिशन्स आज भी भारत और एशिया के अन्य देशों मे सक्रिय है इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि पश्चिम से ईसाई मिशनों को संचालित करने वाले लोग हिन्दू, बौद्ध आदि "धर्मविहीन" लोगों (heathens) की आत्मा को शास्वत नर्क की यातनाओं से बचाने का पवित्र कार्य कर रहे है। वास्तव में, एशिया के देशों में कार्यरत ये ईसाई मिशन्स पश्चिम के पोलिटीक्स और खुफिया तंत्रों के हथकण्डे मात्र है, जिसका प्रयोग प्रायः यहाँ की सरकारों में दखल देने के लिए और यहाँ की समाज-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने के लिए किया जाता रहा है। भूतकाल में पश्चिम की शक्तिशाली सेनाएं यीशु के लिए सक्रिय थीय आजकल पश्चिम की प्रचूर सम्पत्ति के बल पर यीशु के व्यापारी (merchants of Jesus) अपना धंधा चला रहे है। इसलिए भारत में कार्यरत ईसाई मिशन्स के प्रचंड तंत्र में धर्म-तत्व खोजने का व्यर्थ प्रयास करने की भुल कभी नहीं करनी चाहीए।

यह दुःखद आश्चर्य की बात है कि वेद-वेदांग, इतिहास-पुराण, षड्-दर्शन शास्त्र, रामायण-महाभारत, त्रिपिटक, जैनआगम और भक्ति साहित्य की भूमि भारतवर्ष में ईसाई मिशनरीयों को बाईबल के यीशु के लिए आज भी बाजार मिल रहा है! इस से भी ज्यादा विस्मय की बात यह है कि खुद हिन्दू सन्तों, बाबाओं, स्वामीयों, कथाकारों आदि धर्मध्वजीयों और सर्व-धर्म-समभाववादी सेकुलर जमातों द्वारा ईसाईयत को एक ''धर्म'' के रूप में और यीशु को एक ''देवता'' के रूप में स्वीकृति दी जा रही है!! भारत के इस विचित्र वर्तमान परिदृश्य को लक्ष में रखकर इतिहासकार स्व. सीताराम गोयल ने अपनी पुस्तक Jesus Christ An Artifice for Aggression (पृ. ८२) में लिखा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बाईबल का अध्ययन कर यीशु की असलियत सामने रख दी थी, लेकिन दुर्भाग्य से उनके बाद आने वाले हिन्दू नेताओं ने स्वामी दयानन्द के उदाहरण का अनुसरण नहीं किया!! तब से लेकर आज तक एक ओर तो ईसाई मिशन्स के कारनामों की कभी-कभार दबे स्वर में भर्त्सना की जाती रही है, जबकि दुसरी ओर यीशु की प्रशंसा के पुल बांधे जाते रहे है!! लेकिन यह प्रयुक्ति कारगर सिद्ध नहीं हुई है। यीशु के प्रति हिन्दूओं के इस लगाव को सीताराम गोयल जी हिन्दूओं की कमजोरी के रूप में देखते है। उनका कहना है कि हिन्दूओं की इस कमजोरी का भरपूर लाभ उठाकर ही राइमुन्डो पनिक्कर (The Unknown Christ of Hinduism), एम.एम. (The Acknowledged Christ of the Indian Renaissance), के.वी. पॉल पिल्लई (India's Search for the Unknown Christ), एलिसाबेथ क्लेर प्रोफेट (The Lost Years of Christ), केथलिन हिली (Christ as Common Ground A Study of Christianity and Hinduism) आदि ईसाई लेखक हिन्दू धर्म में यीशु को बलात् घुसेडने को प्रोत्साहित हुए है, जबकि वास्तविकता यह है कि यीशु ख्रिस्त और हिन्दू धर्म के मध्य दूर दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। हिन्दू पुनर्जागरण के किसी भी पुरोधा ने यीशु को ख्रिस्त (मसीहा) के रूप में स्वीकार नहीं किया था, और न ही यीशु, यदि वह वास्तव में था, ज्ञान प्राप्त करने या ज्ञान देने के लिए कभी भारत आया था। इसी तर्ज पर और इसी उद्देश्य से लिखी गई ऐसी और कई पुस्तकों का उल्लेख लिया जा सकता है, जिसमें यह सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयास किया गया है कि यीशु को ख्रिस्त (मसीहा) के रूप में स्वीकार किये बिना हिन्दू धर्म अपूर्ण है। सीताराम गोयल जी का कहना था कि जब तक हिन्दू समाज स्पष्ट रूप से यह घोषणा नहीं कर देता कि सनातन धर्म और एक-मात्र उद्धारक की ठेकेदार ईसाईयत के मध्य कुछ भी समानता नहीं है तब तक बाजार में ऐसी फर्जी पुस्तकों की बाढ आती रहेगी। डा. कोनराड एल्स्ट का भी मन्तव्य है कि हिन्दूओं को, जो यीशु विषयक भावनात्मक जाल में फंस चुके है, यह जानना पडेगा कि हिन्दू धर्म का सार "सर्व-धर्म-समभाव" नहीं है, बल्कि हिन्दू (वैदिक) धर्म का मूल तत्व "सत्य" है।

अतः हिन्दू समाज के लिए यह समझ लेने का समय आ गया है कि यीशु हमारे लिए आध्यात्मिक शक्ति का प्रतिक या नैतिक जीवन का आदर्श कभी नहीं हो सकता। इतिहास साक्षी है कि शुरुआत से ही साम्राज्यवादी आक्रमणों के लिए यीशु का एक साधन के रूप में प्रयोग किया गया है, और आज भारत के सन्दर्भ में भी यीशु साम्राज्यवादी आक्रमण के एक साधन से ज्यादा और कुछ नहीं है। इन आक्रमणकारीयों के लिए यीशु रूपी यह साधन बहुत ही फायदेमंद सिद्ध हुआ है। इसलिए हिन्दू समाज को यह वास्तविकता समझ लेनी चाहीए कि साम्राज्यवादी ताकतों का यीशु रूपी यह हथकण्डा अपने देश और संस्कृति के लिए विध्वंसकारी सिद्ध हो सकता है। सीताराम गोयल का कहना है कि, "The West] where he [Jesus] flourished for long] has discarded him as junk- There is no reason why Hindus should buy him- He is the type of junk that cannot be re-cycled- He can only poison the environment"- अर्थात् ''पश्चिमी जगत ने, जहाँ वह यीशु, एक लम्बे समय तक फूला-फाला, उसको अब कबाड-कचरा समझकर फेंक दिया है। इसलिए कोई कारण नहीं है कि हिन्दू समाज उस कबाड को खरीदें। वह ऐसा कबाड है जिसे रि-सायकल नहीं किया जा सकताय वह केवल वातावरण को प्रदूषित ही कर सकता है।''

(Jesus Christ he Artitice for Aggression पृष्ठ ८५)

पृष्ठ....३ का शेष

बस वही है, भारतीय युवा वही है भारतीय युवा, भारतीय युवा।
जो मात्र खाओ-पीओ और मौज
करों की, तुच्छ मानसिकता का स्वामी है,
जिसके आचरण से सिगरेट, शराब, ड्रग्स आदि की दुर्गंध आती हो,
जिसकी मानसिकता विनाशकारी शक्तिओं में रम जाती हो,
वह नहीं है, प्यारे भारत का युवा,
सार्वभौमिक, सार्वकालिक सार्वदेशिक, प्रकाशपूर्ण, ऊर्जावान हमारे स्वप्नों के भारत का युवा
नहीं है, प्यारे राष्ट्र का युवा।
वह है।

जिसकी शिराओं में नीर-क्षीर, विवेक निर्भीकता एवं नेतृत्त्वकर्तृता का रक्त संचारित हो,

जिसकी धमनियों में मातृभूमि प्रेम,

मानवीय मूल्यों, मार्गदर्शन-दिग्दर्शन का रक्त प्रवाहित हो, और जिसके मन-मस्तिष्क एवं हृदय में अध्यात्म अद्भुत संकल्प व अखण्ड सार्थक सकारात्मक विचारों का वास हो, उसी की जिन्दगानी लिखती है कहानी उसी की जवानी मोड देती है, राष्ट्र की रवानी ।। भारत माँ के वीर-वीरानाओं की है यही कहानी।

बुराई, व्यभिचार एवं झंझावातों को देख भर जाए आँखों में आक्रोश और हृदय हो जाए तूफानी ।।

मेरी युवा बहनों एव भाइयों मैं यह आह्वान करती हूँ कि जीवन में स्थितियाँ चाहें जितनी प्रतिकूल हो पथ में चाहे जितने शूल हों, परिस्थितियाँ भले ही विषम हों हम सब मिलकर वैचारिक क्रांति लाएंगे और आने वाले समय में हम राष्ट्र का नेतृत्व करेंगे। उठिए खड़े हो जाइए सजग हो जाइए सतर्क हो जाइए, ताकि सत्ता पाने मात्र की इच्छा से राजनीति करने वाले जनप्रतिनिधियों को हम राजनीति में आने से रोक सकें।

हम राष्ट्र के जागरूक नेतृत्वकर्तृता बनें-

हमें यजुर्वेद जागरणशील बनने हेतु उद्घोष करता है कि ''आ राष्ट्र राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथी जायताम्।।'' (यजु. २२/२२) अर्थात् साहसी लक्ष्य, वेधी और महारथी बनकर रहें। हमें आलसी, प्रमादी, निराशावादी बनकर नहीं जीना है। सदा सर्वदा, प्रत्येक स्थिति में जागरणशील रहना है। पुनः पुनः वेद हमें प्रेरित करता है कि-

''वयं राष्ट्र जागृयाम पुरोहिताः।'' (यजु. ९/२३) अपने राष्ट्र में नेता (नेतृत्वकर्त्ता) बनकर हम जागरूक हो।

मैं ऐसा किंचित नहीं सोचना कि हम कर सकते हैं (We can do it) हमें सदैव सोचना है कि हम करेंगे और करना ही हैं (We will do it, we have to do)

निराशा को आशा में एवं नकारात्मक सोच को सकारात्मक ऊर्जा मे कैसे बदलें?

जीवन का प्रत्येक क्षण (दुःख हो या सुख), प्रत्येक परिस्थिति (सम या विषम), प्रत्येक स्थिति (विपदा हो या सम्पन्न) आदि का सम्मिश्रण ही जीवन की परिभाषा है। बस हमें कुछ बदलना है, तो अपने सोचने का ढग बदलना है। सही सार्थक एवं सकारात्मक सोच ही हमें कर्मवीर, धर्मवीर एवं शूरवीर बनाती हैं। क्योंकि व्यक्ति की मानसिकता हमारे सोचने का तरीका ही निर्धारित करता है, कि हमें कैसा जीवन जीना है, कौन सा मार्ग चुनना है? मैं अपनी लिखी कविताओं में से एक और कविता के द्वारा पुनः हुँकार भरूँगी कि- ''परीक्षाओं की ऋतु है, अभी तो क्या एक दिन सुखद, परिणाम भी आएगा। संघर्षों- झंझावातों का मौसम है तो क्या गुरु बन यही एक दिन जीवन में निखार निश्चय ही लाएगा। समस्याओं की समाधान की है जिसने कठिनाइयों का सच्चा विश्लेषण किया है, उसने दुःख, वेदना इनका भी अनुभव निराला है आराधक बन जिसने इन्हें अपने अंक (गोद) में पाला है।

अमावस्या की रात्रि है तो कभी पूर्णिमा की उजियारी भी है। जब सृष्टि की प्रथा ही परिवर्तन हो, तो कैसे मात्र सुखों का ही अभिसिंचन हो? हमारे पथ शूल से परिपूर्ण हो चाहे जितने नैतिकता, दृढ, निश्चय, वज्र साहस के उपासक बन हम, कुछ नहीं से सब कुछ रच डालेंगे। किन्तु शुभसंकल्पों व धैर्य का वरदहस्त न छोड़ेंगे, लक्ष्य मित्र बन एक दिन गले अवश्य लगाएगा परीक्षाओं की ऋतु है, अभी तो क्या एक दिन सुखद, परिणाम भी आएगा। संघर्षों-झंझावातो का मौसम है तो क्या गुरु बन यही एक दिन जीवन में निखार निश्चय ही लाएगा।।''

इस प्रकार मेरे प्यारे राष्ट्र की युवा बहनों एवं भाइयों आपकी यह बहन वैचारिक दृढ़ता के साथ एक वैचारिक क्रांति की मशाल जलाने का आह्वान करती है कि बस हमें अपनी क्षमताओ, अपने अस्तित्व को पहचानने की आवश्यकता है। ताकि भारत की धरती से एक ऐसी तीव्र मशाल जले जो अन्य राज्यों को श्री प्रकाशित करके सुन्दर सुसज्जित, सुव्यवस्थित एवं संगठित राष्ट्र का निर्माण कर सके।

आर्य समाज वेद मन्दिर हेतु दानवीरों से दान देने की अपील

बड़े हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि आर्य समाज बाँगरमऊ जनपद उन्नाव उ.प्र. द्वारा आर्य समाज बाँगरमऊ के नाम क्रय की गयी लगभग १२०० वर्ग फिट भूमि पर आर्य समाज वेद मन्दिर का निर्माण कार्य दिनांक ०६.०५.२०२४ से प्रारम्भ है।

उक्त भूमि के प्रथम खण्ड में सत्संग भवन, द्वितीय खण्ड पर यज्ञशाला एवं महर्षि दयानन्द वैदिक पुस्तकालय तथा तृतीय खण्ड पर अतिथिशाला निर्माण आप सभी दानवीरों के सात्विक दान से ही सम्भव है।

अतः देश व प्रदेश की सभी आर्य समाजों, धर्मप्रेमी दानवीरों, माताओं, बहनों से सानुरोध निवेदन है कि इस रचनात्मक कार्य में हमारा सहयोग करें अपनी दानराशि आर्य के खाता संख्या-**731210110008781, IFSC Code BKLD0007312** बैंक ऑफ इण्डिया शाखा बाँगरमऊ के नाम प्रेषित कर सकते हैं अथवा आर्य समाज बांगरमऊ के नाम चेक/ड्राफ्ट/नकद दान राशि देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप अपने परिजनों की पुण्यस्मृति में किसी खण्ड का निर्माण कराना चाहते हैं अथवा मन्दिर निर्माण सामग्री देना चाहते हैं तो निम्न मोबाइल नम्बर पर सम्पर्क करें। दानदाता का नाम व पता शिलालेख पर अंकित होगा तथा आर्य समाज बांगरमऊ आपका सदैव आभारी रहेगा।

सम्पर्क सूत्र-**8181815403, 8172853617**

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र आर्यमित्र आर्यमित्र २० जून, २०२४ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
.....

आर्ष गुरुकुल एटा में नवप्रविष्ट विद्यार्थियों का उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार हुआ।

दि० १७ जून २०२४ को कुलाधिपति डॉ० वागीश आचार्य, कुलपति प्रो० ओमनाथ बिमली,महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के प्रो सुरेन्द्र कुमार, डा० सुरेश चन्द्र शास्त्री,प्रो विनय विद्यालंकार, संदीप शजर, डा० अवनीश कुमार, ब्र०शिवस्वरूप, डा० हरिदेव आर्य, धर्मवीर शास्त्री, डा० वेदप्रकाश, डा० ओमप्रकाश, दिनेश बन्धु आदि विद्वज्जन व स्नातकों ने नवीन ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद दिया।आचार्य शुचिषद् मुनि जी ने उपनयन एवं वेदारंभ संस्कार की समस्त विधियों को यज्ञ के साथ सम्पन्न कराया। नगर पालिका अध्यक्ष श्रीमती सुधा गुप्ता विशिष्ट अतिथि के तौर पर पधारी और गुरुकुल के सहयोग का आश्वासन दिया। आचार्य विद्याव्रत कुमार, डा० भीष्मदेव, योगेन्द्र कुमार, अध्वरेश, ब्रह्मप्रकाश, गणेश शास्त्री,वासुदेव एवं विद्यार्थियों के अभिभावक उपस्थित रहे।

शोक समाचार

आर्य समाज टेढ़ी पुलिया, लखनऊ के प्रधान श्री रामकेश शर्मा का लगभग ८२ वर्ष की आयु में दिनांक ८ जून, २०२४ को लम्बी बीमारी के कारण बैंगलोर में देहान्त हो गया। उनका अन्तिम सँस्कार पूर्ण वैदिक रीति से बैंगलोर में परिजनों द्वारा किया गया।

अध्यापक पद से सेवा निवृत्त स्व. शर्मा जी सहज, सरल व मिलनसार व्यक्ति थे। एक-दो बार भेंट में ही आदमी को अपना बना लेते। आत्मीयता के धनी शर्मा जी किसी कार्य को अच्छे ढंग व विधान से करने की कला में पारंगत थे। ऋषिवर व आर्य समाज के कार्य तो उनके मन मष्तिक में रचे-बसे थे। सत्य सनातन वेद प्रचार न्यास लखनऊ के संरक्षक के पद पर भी उनकी सेवायें सदैव स्मरणीय व अनुकरणीय रहेंगी।

- महर्षि दयानन्दार्ष गुरूकुल महाविद्यालय (ब्रह्माश्रम) राजघाट (नरौरा) बुलन्दशहर के प्रबन्धक श्री राम अवतार आर्य निवासी ग्राम नगला गंगापुर का आकस्मिक निधन दिनांक १६ जून, २०२४ को प्रातः हो गया।

स्व. रामऔतार आर्य जी का गुरूकुल की उन्नति व उत्कर्ष में विशेष योगदान रहा है। उसके प्रति पूर्णतः समर्पित थे। उनके कुशल योगदान को सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

- आर्य समाज राजनगर, गाजियाबाद के स्वागताध्यक्ष श्री ओम प्रकाश आर्य के लघुभ्रात श्री प्रेम प्रकाश आर्य का दिनांक १४ जून, २०२४ को हापुड़ में मृत्यु हो गयी।

स्व. प्रेम प्रकाश आर्य दैनिक अग्निहोत्री सौम्य, मृदुभाषी व ऋषि भक्त थे। उनके निधन से आर्य समाज को अपूर्णनीय क्षति हुई है जिसकी पूर्ति असम्भव है।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा एवं समस्त पदाधिकारियों ने दिवंगत आत्माओं के प्रति अपनी शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए उनकी शांति हेतु तथा शोकाकुल परिजनों को यह असहनीय दुःख सहने करने की शक्ति देने की परमेश्वर से प्रार्थना की है।

ओ३म् कीर्तिर्यस्य स जीवति

हम सब समस्त हि.ए.लि. से सम्बंधित वर्तमान-निवर्तमान सदस्यगण के लिए गर्व की बात है कि सर्वप्रिय एच.ए.एल. लखनऊ की बालरोग विशेषज्ञ एवं चिकित्सा विभागाध्यक्ष सम्माननीया श्रीमती डॉ.सुरभि गुप्ता जी को उनकी सामाजिक सेवाओं के लिए महामहिम राज्यपाल उ. प्र. माननीया आनन्दी बेन पटेल ने आज दि.१४ जून, २०२४ ई. को प्रशस्तिपत्र भेंटकर सम्मानित किया। वास्तव में वे सर्वथा इसके योग्य हैं कोरवा डिवीजन में भी डॉ. साहिबा लम्बे समय तक चिकित्सा विभाग में सेवारत रहीं और चिकित्सा विभागाध्यक्ष भी रहीं वहाँ भी जन सेवा के लिए सुप्रसिद्ध थीं कोई भी किसी समय चिकित्सकीय सेवा प्राप्त कर सकता था और सकता है। यथार्थ में यह सम्मान ही सम्मानित हुआ है। इस अवसर पर आर्य समाजी परिवार में जन्में डॉ.साहिबा के पति डॉ.राजीव रस्तोगी मुख्य चिकित्साधीक्षक(सेफई) जो कि बहुत ही जनप्रिय और सुप्रसिद्ध अस्थिरोग विशेषज्ञ हैं इन्होंने पूज्यपाद स्वामीसत्यप्रकाश जी की भी समय समय पर चिकित्सा की है, इनके साथ ही डॉ.सुरभि गुप्ता जी की पूज्या माता जी जो कि ६०वर्ष से अधिक आयु की हैं आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित थीं। इसके अतिरिक्त अनेक गणमान्य लोग तथा लाभान्वित जन की उपस्थिति में सम्मान पत्र प्राप्त किया। हम भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए मुहूर्मुहुः बधाई देते हैं ईश्वर सदा आनन्दित रखे।

यह स्मरणीय और अनुकरणीय है कि इस अवस्था में जबकि सेवानिवृत्ति के मात्र १५दिन शेष रह गए हैं वे स्वयं अस्वस्थ होते हुए अपने समस्त पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व का सुन्दर निर्वहन करते हुए श्रवण कुमार की तरह अपने वयोवृद्ध माता तथा पूज्य पिताजी जो लगभग ६५ वर्ष से भी अधिक आयु के और अस्वस्थ चल रहे हैं अभूतपूर्व देखभाल कर रही हैं। जो आज की पीढ़ी के लिए मिशाल है।

पुनरपि कीर्तिमान ही सदा जीवित रहता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अन्तरंग सभा के कुछ चित्र

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस, 5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।